

सहजानंद शास्त्रमाला

मनोहर-पद्मावली

रचयिता

अद्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास
गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

॥३॥
श्री वीतरागाय नमः

मनोहर-पद्मावलि

रचिताः—

पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ मनोहर लाल जी वर्णी न्यायतीर्थ
(ब्रत लेने के पूर्व गृहस्थावस्था में रचित)

—०:०:०—

प्रकाशक—

जैन समाज, मुजफ्फरनगर

प्रथम
संस्करण
१००० } कार्तिक बदी १०, सं० २००७ / मूल्य
} ३५वीं वर्षगांठ पूज्य क्षुल्लक जी महाराज (छ: आने

“पूज्य वर्णी जो” (कवि के रूप में)

आज आपका परिचय एक ऐसे महान आत्मा से कराते हुए अति हर्ष होना है जो न केवल त्यागी ही हैं अपितु उत्कट विद्वान्, शांति की प्रति मूर्त्ति और उच्च काटि के कवि भी हैं। रत्न मिट्टी में से ही निकलता है, कमल की चड़ियों में से ही पैदा होता है। दियासत ओरछा, जिला भाँसी में दमदमा नामक एक छोटे से गांव में कार्तिक बढ़ी १०, विक्रम सं० १९७२ को श्रीमती तुलसाबाई जी की कुँक्ष से एक रत्न पैदा हुआ जिसने अपनी आभा से तमाम भारतवर्ष को प्रकाशित कर दिया। आप हैं परम पूज्य श्री १०५ कुल्लक मनोहर लाल जी वर्णी, जिनको कौन ऐसा व्यक्ति है जो न जानता हो। हर वर्ष की अवस्था में ही आप के पूज्य पिता जी श्री गुलाब चन्द्र जी जो बड़े धर्मात्मा व सज्जन थे आपको अपने ही पुरुषार्थ स महान पद प्राप्त करने के लिये सदैव के लिये छोड़ कर चल बसे।

बचपन से ही आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। विद्याध्ययन में आप की विशेष रुचि है। आप द वर्ष की अवस्था में ही सागर विद्यालय में विद्याध्ययन के लिये चले गये। १७ वर्ष की अवस्था में ही आपने न्यायतीर्थ और शास्त्री की परीक्षायें पास कर ली। विद्वता के साथ २ ही आपका प्रवचन-प्रणाली ऐसी मनोहर है कि श्रोताजन मन्त्र मुरुग से हो जाते हैं। लेखन-शैली तो आपकी अद्वितीय है ही। इन सब के अतिरिक्त आप को बचपन से ही संगीत का शौक रहा है। जब आप सागर विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उस समय आप ने एक छोटा सा हारमोनियम खरीदा और सीखना शुरू कर दिया। एक दिन गुरु जी ने देख लिया। फौरन ही उस हारमोनियम को बेचना पड़ा। परन्तु संगीत का इतना शौक था कि एक बांसुरी खरीद ली और उस ही के बजाने लगे। आपको कविता व छंद शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान है जिसका पता इस पुस्तक से सहज ही चल जायेगा।

(ब)

शांति की तो आप प्रति मूर्ति ही हैं। क्रोध और मन तो आपको क्षुतक भी नहीं गया है। सदैव प्रसन्नचित्त दिव्यलार्इ देव हैं। किसी भी समय क्रोध की एक रेखा भी आपके चेहरे पर दिव्यलार्इ नहीं देती है। आपके दर्शन मात्र से ही शांतिता हृदय में आ जाती है फिर आपके प्रवचन श्रवण से तो कैसे कल्पणा न होगा सोच नहीं सकते।

‘होनहार विवान के होत चीकने पात’।

बचपन से ही आप वैराग्य की ओर झुके हुये थे। जल में कमल की भाँति घर में बसते थे। बार बार दिमाग में आता था कि ये जो सुख सामग्री प्राप्त हो रही हैं वह सब सदैव रहने वाली नहीं हैं, ज्ञानभंगुर हैं।

छोटी अवस्था में ही आपका विवाह हुआ। परन्तु उस स्त्री का संसर्ग अधिक दिन तक न रह सका। २० वर्ष की आयु में ही देहान्त हो गया। आपकी इच्छा न होते हुये भी आपके घर वालों (विशेषकर स्वसुर) व गांव वालों के अधिक आग्रह करने पर आपको दूसरी शादी करानी पड़ी। परन्तु ६ वर्ष पश्चात् वह स्त्री भी आपका मार्ग निष्कंठकी बना कर चली गई। जिस समय दूसरी स्त्री का देहान्त होने वाला था उससे ५ मिनट पहले आप अपने चाचा के थहरां गये और आपने वहां पर यह घोषणा कर दी कि अब आप तीसरी शादी न करायेंगे और ब्रह्मचर्य से ही रहेंगे।

स्त्री के देहान्त के बाद आपके घर वालों ने आपसे तीसरी शादी करने के लिये बहुत आग्रह किया। परन्तु आप तो पूर्ण रूप से वैराग्य में रम चुके थे। उस समय आपने कुछ वैराग्यपूर्ण पद्धति रचे जिनका संग्रह मनोहर पद्मावति में किया गया है जिससे उनके उस समय के विचारों का सहज ज्ञान हो जाता है। साथ ही आपके छंद शास्त्र के ज्ञान का भी पता चल जाता है।

६ महीने आपने अपना आगामी मार्ग निश्चय करने में ही व्यतीत कर दिये। इस बीच में आपने अपने घर वालों और गांव वालों के

शादी के आग्रह से तंग आकर ‘जैन सन्देश’ में इस आशय की सूचना निकलवा दी कि “मैंने अब निश्चय कर लिया है कि तीसरी शादी न कराऊंगा और पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहूंगा। अतः कोई सज्जन अब शादी के विषय में मुझसे कोई अनुरोध न करें”। इतना करने पर भी जब आप अपने घर की व्यवस्था ठीक करने वाम में आये तो आप के चाचा जी और आस पास के गांव वालों ने आपके सामने किंवदं शादी का प्रस्ताव रखा और कहा कि वह समाचारपत्र में भेज देंगे कि आप की नो शादी करने की इच्छा न थी परन्तु बहुत आग्रह करने पर तैयार हुए हैं। परन्तु अब तो आपने अपना मार्ग निश्चय कर लिया था। आपने किसी की एक न मानी। आप २७ वर्ष की आयु में सिद्धेन्द्री श्री शिखर जी को चल दिये और वहां जाकर परमपूज्य श्री १०५ हुम्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी के समक्ष ब्रह्मचर्य व श्रावक द्वित धारण किये।

अब तो आप सब भंकटों से बूट गये। एक ही काम रह गया। वह था सुख और शांति प्राप्त करना। सो भी ज्ञान-वृद्धि के विना असम्भव जानकर आप ज्ञान-वृद्धि की ओर पूरे प्रयत्न से लग गये। परिणामों में दिन प्रति दिन उज्ज्वलता ही आती गई। एक वर्ष बाद ही २८ वर्ष की अवस्था में काशी में सत्तम प्रतिमा के ब्रत आदरे।

सन् १६४४ ई० में ५० गणेश प्रसाद जी वर्णी दशम श्रावक (वर्तमान पूज्य श्री १०५ हुम्लक गणेश प्रसाद जीं वर्णी) इसरी से पैदल यात्रा करके सागर (सी० पी०) पधारे थे। इस वर्ष दसलाक्षण पर्व भाद्र मास में कुछ उत्तर प्रान्त के सज्जन सहारनपुर आदि स्थानों से पूज्य श्री वर्णी जी का उपदेशमृत पान करने के लिये सागर गये। वहां परं उत्तर पूज्य श्री वर्णी जी के उपदेश तथा स्थानीय समाज के आचरण विचारों से बहुत ही प्रभावित हुए। उत्तर प्रान्त को कल्पाणार्थ अपने मुख्य शिष्य को भेजने के लिए पूज्य वर्णी जी से प्रार्थना की। ५० मनोहर लाल जी को ही इस कार्य के लिये उपर्युक्त

समझा गया। आप से प्रार्थना की। टाल न सकं कोमल हृदय होने के कारण। उत्तर प्रान्त का आहोभग्य कि आपने जून मन् १९४५ ई० में सहारनपुर पधारने की कृपा की।

आपने देखा कि संसार के प्रणी भोह में आधे हुए अपने सच्चे स्वरूप को भूल कर दुखी हो रहे हैं। आपका कोमल हृदय तड़प उठा सहन न कर सके। आपके उपदेश से प्रभावित होकर समाज ने उत्तर प्रान्तीय दिग्म्बर जैन गुरुकुल की स्थापना सहारनपुर में कर दी। (अब यह गुरुकुल उत्तर प्रान्त के कन्द्र तथा तीर्थ स्थान हर्षतनामग्नपुर में कार्य कर रहा है) इसमें आदर्श शिक्षा प्राप्त करके आज के बच्चे ज्ञान प्राप्त कर सच्चे सुख अथवा आत्मिक सुख को प्राप्त कर सकेंगे ऐसी हमें आशा है। इनने मे हो आपको चैन न मिला। आप गांव-गांव शहर-शहर धूम कर लोगों को बता रहे हैं वह सच्चा मार्ग जिस की हमको वास्तविक आवश्यकता है। मो भी बड़े ही मरल शब्दों में। “हे संसार के जीव ! तूने आत्मा को भूल कर देह हृषि रखकर अनन्त जीवन व्यतीत किये तथापि उसके बाद भी तेरे भव भ्रगण का दुख तो दयों का स्थौं बना ही रहा किन्तु अब आत्म-हृषि पूर्वक एक जीवन तो ऐसा व्यतीत कर कि जिम्मे भव संतति मिट जाये और सदैव के लिये दुखों से छुटकारा मिले और सच्ची शांति प्राप्त हो।” आप केवल दूसरों को ही उपदेश नहीं देते अपितु व्ययं उम मार्ग पर चल कर संसार के दुखी प्राणियों का और अपना कल्याण भी कर रहे हैं।

इसके पश्चात् आपने जबलपुर में आठवीं और फरवरी मन् १९४८ ई० में बग्बासागर में नवमी प्रतिमा, दिग्म्बर मन् १९४८ ई० में आगरा में दसम प्रतिमा अपने गुरु पूज्य श्री वर्णी जी के समक्ष ली।

परिणामों के चढ़ने में क्या देख लगती है। बहुत ही छोटी सी वय में सम्बन् २००५ में सब के मना करने पर भी आपने श्री हर्षतनामग्नपुर तीर्थ केत्र पर पूज्य श्री वर्णी जी के ही समक्ष ११वीं प्रतिमा धारण

(य)

की या यूं कहाये वर्तमान पद ग्रहण किया ।

इस छाटी सी अवस्था में इतना ज्ञान प्राप्त करने का कारण आप के ज्ञानावरण कर्म का ज्योपशम तो है ही परन्तु आप की गुण भक्ति भी इसमें विशेष सहायक हुई । आपके गुरु पूज्य श्री वरणी जी के प्रति आप का ऐसा व्यवहार है कि जिस की उपमा आज नहीं दी जा सकती । पिता-पुत्र-प्रेम से भी कहीं अधिक ।

इस समय आप का चातुर्मास मुञ्जफरनगर में हो रहा है । आप की मनोहर वाणी को सुनकर हजारों स्त्री पुरुषों ने अपना कल्याण किया और निरन्तर कर रहे हैं । आपका तो वही सीधा-सादा उपदेश है “राग छोड़ो, द्वेष छोड़ो, माह छोड़ो आप को आप पर को पर जानो और सुखा हो लो ।” हर एक को आपका यही उपदेश है जिना किसी मत मतान्तर के भेद के । ब्रह्मचारी जीवा राम जी व बाल ब्रह्मचारी पवन कुमार जी भी आपके साथ रहकर अपना भी कल्याण कर रहे हैं और यहां की जनता का भी उपकार कर रहे हैं । समय २ पर सर्वे श्री रतन चन्द जी मुख्तार, नेम चन्द जी वकील सहारनपुर, रिखब दास जी मेरठ व भगतराम जी ‘भक्त’ देहली वालों का आगमन यहां की जनता के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहा है क्योंकि उनके आचरण से पता चलता है कि गृहस्थी में रहकर भी हम किस प्रकार अपने विचार पवित्र रख सकते हैं ।

‘गृहस्थी में रहकर भी हम अपन विचार पवित्र और वैराग्य पूर्ण कैसे बना सकते हैं, इस प्रश्न का उत्तर आपको ‘मनोहर पद्मावलि’ से मिलेगा । शान्तिपूर्वक इस पुस्तक का अध्ययन करो और सुखी हो जाओ ।

प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय श्री वरणी जी के विशद और अनुभूतिपूर्ण

(र)

कविताओं से ज्ञान उठा सकते हैं। कौन? जिनका संसार थोड़ा रह गया है या मोक्षाभिलाषी। हमें पूर्ण आशा है कि इस पश्चावलि से पाठकों को आध्यात्मिक-ज्ञान-जन्य शान्ति का आभास मिलेगा और उस आभास बोध से उनकी हुचि आध्यात्म-शास्त्र की ओर बढ़ेगी जो मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढ़ी है।

जैन समाज
मुख्यमन्त्रनगर।

श्री वीतरागायनमः

मनोहर-पद्मावलि

(१)

मन ध्याइये जिनपति जन रंजन,

भव भय भंजन त्रिभुवन चन्दन ॥टेक॥

शिवमग दाता शिवमग नायक,

शिव मय त्राता शिव सुख दायक ॥१॥

विश्व बुद्ध जय सुमति विधायक,

वसु विधि हर्ता विधन विनाशक ॥२॥

जनम मरण गद मद नहीं विस्मय,

आरत चिन्ता शोक जरा भय ॥३॥

शान्त 'मनोहर' मुद्रा निरूपम,

ब्रह्म तम भंजन चन्द्र कला सम ॥४॥

सम रस वरषण मेघ घटा सम,

शान्ति स्त्रवावन शुचि सरिता सम ॥५॥

(२)

जय जय जय जय जिनेन्द्र ॥टेक॥

मूर्य चन्द्र कल्प इन्द्र, मवन इन्द्र व्यन्तरेन्द्र,

नृप नृपेन्द्र वर मृगेन्द्र, वन्दत पद शतक इन्द्र ।

ध्यावत योगी मुनीन्द्र ॥१॥

विन भूषण सुभग रूप, निर्भय निर्मल अनूप,

परम शांत ज्योति रूप, निर्देषी त्रिजग भूप ।

मैटे जग मोह तन्द्र ॥२॥

‘मनहर’ जग जन मनहर, शिवमय शिवरमणीवर,

समसुख रस शुचि सरवर हितकर दुखहर सुखकर ।

जय जय जय जय महेन्द्र ॥३॥

(३)

पायो दुख कर्म संग ॥टेक॥

यह जड़ नाना विरूप, होत भंग मूर्त अंग,

चेतन तू एक रूप है अंभग सत अनंग ।

फिर भी ये करहिं तंग ॥१॥

इनको सँग लहत लहत दुख सुख सब सहत सहत,

चारों गति न चत फिरत, बना राव कभी रंक ।

गति लखि हो गयो दंग ॥२॥

जनत मरत घढ़त लहत, कहत भजत चलत फिरत,

चहत रहत सुरत करत, कुपत छलत सजत अंग ।

प्रविशत चित अंग अंग ॥३॥

‘मनहर’ शिव रमण चहत, अगणित सुख भजन चहत,

जगत दहन शमन चहत, तो रच मत विषय रंग ।

विश्व वन्द्य हो विरंग ॥४॥

(४)

जिन राज के भजन में यदि प्रेम किया होता ।

संसार के दुखों का आभास नहीं होता ॥टेका॥

सत्यान्व अतिथियों को गर दान दिया होता ।

दारिद्र्य के दुखों का आगार नहीं होता ॥१॥

पंचाक्ष के विषय में वैराग्य किया होता ।

तो शील सुधा पीकर जग जीत लिया होता ॥२॥

यदि अन्य प्राणियों को नहीं कष्ट दिया होता ।

तापक वियोग दुख का आधार नहीं होता ॥३॥

अपने में आपके बल अपने को लखा होता ।

अविराम अमित दुख से तू आर्त नहीं होता ॥४॥

दुख धाम दाम परिजन पर मान लिया होता ।

मिलने व विछुड़ने में आङ्गुल न कभी होता ॥५॥

इकले हि जन्म लेता नहिं कोई साथ आता ।

मरता भि अकेला है नहिं कोई साथ जाता ॥६॥

इकले हि पाप बांधे नहिं कोई सांझ होता ।
 इकले हि भोगता दुख नहिं कोई बांट सकता ॥७॥
 संसार है न तेरा संसार का न तू है ।
 विश्वास अगर होता सुख धाम बना होता ॥८॥
 यदि तेरे मन 'मनोहर' भगवान बसा होता ।
 कर्मों में नहीं दम जो नजरों से देख लेता ॥९॥

(५)

माया का तमाशा है, अहा अहा,
 हर एक छटावो में हा.....
 आशा ही निराशा है ॥माया०॥टेक॥
 विषयों का विषम विष रस, रसिया हो रसा अब तक हा.....
 वै प्यासा ही प्यासा है ॥माया०॥१॥
 निज देश चलो चेतन, यहाँ कोई नहीं अपना,
 ममता की नींद छोड़ो, क्यों देख रहे सपना,
 भूठी ही दिलासा है ॥माया०॥२॥
 उस भाव में समावो माया के इशारे पर,
 मति ब्रष्ट न हो पाये ।
 सुख भी तो जरा सा है अहा अहा.....॥माया०॥३॥
 प्रिय शांति दया समता, बस जाँय हृदय तेरे,
 ईश्वर को सौंप दे मन, मिट जाँय दुःख तेरे,

बस ये ही दिलासा है ॥माया०॥ ४॥
 तक रूप वह 'मनोहर', माया के नज़ारों में,
 इच्छा नहीं हो तेरे,
 किर कोई न पाशा है । अहा अहा । ...माया०॥५॥

(६)

जाना कर्मों का कपट छन्द । ये भोले ठग हैं दुख निकंद ॥टेका॥
 विषयों के सुख का लालच दे, चेतन तेरी वे निधि हरते ।

इस ही से चिर हुआ द्वन्द्व ॥ जाना०॥१॥

करत उपशमक यद्यपि उपशम, तदपि तजत नहिं ये अपनी दम ।

पटक देत मिथ्यात्व फंद ॥ जाना०॥२॥

जितना चाहे विधि लालच दे, लालच में नहीं आउँ दुर्मृते ।

बस ले खल अब दिवस चंद ॥ जाना०॥३॥

कोप मदन मद तृष्णा छल डर, शोक अरति रति छोड़ 'मनोहर' ।

क्यों होगा किर कर्म बध ॥ जाना०॥४॥

(७)

बसना सँभल सँभल कर भव बन में बसने वाले ।

चलना सँभल सँभल कर जग में विचरने वाले ॥टेका॥

कर्मों का राज्य यहां पर, चेतन से बैर जिनका ।

करना सँभल सँभल कर अपराध करने वाले ॥१॥

माया का जाल फैला, विषयों के कण सजे हैं।
 भजना सँभल सँभल कर, विषयों के भजने वाले ॥२॥
 गृहजाल में न फसना, फसना तो बच के रहना।
 फसना सँभल सँभल कर गृह जाल फसने वाले ॥३॥
 अपना सा और का दिल, मानों नहीं सतावो।
 हसना सँभल सँभल कर अन्याय करने वाले ॥४॥
 रोने के फल में आखिर, रोना ही रोना होता।
 रोना सँभल सँभल कर विषदा में रोने वाले ॥५॥
 जो भाव हों मरण में, वैसा ही गति मिलेगी।
 मरना सँभल सँभल कर भूठे ही मरने वाले ॥६॥
 खाने को नहीं जीना, जीने के लिये खाना।
 जीना सँभल 'मनोहर' दो दिन को जीने वाले ॥७॥

(८)

चेतन तुम अनन्त सुख धारी।
 कर्मों की कटु चाल सोचकर, काहे चिन्ता धारी ॥चेतन०॥टेक॥
 ये तो आत्म विभाव सहारे, दे सकते दुख कर्म विचारे।
 मत विभाव कर तो ये हारे, सो तेरी छुराई ॥१॥
 भेद ज्ञान को टुक प्रगटा ले, आत्म विभाव सभी विघटा ले।
 फिर यें कर्म तुझे तज देगें, सो तेरी चुराई ॥२॥
 तू चेतन ये कर्म महा जड़, तू प्रकाशमय ये मिथ्यातम।

जब निज मय होगे पा लोगे, अपनी वह मधुराई ॥३॥

तन धन जन जग सर्व विराने, ओङ् 'मनोहर' होउ सयाने ।
तो तोकूँ निश्चय चाहेगी, शिवरानी सुखदाई ॥४॥

(६)

कोइ भाई मुझे बतला देना जग में कोइ अमर रहा अब तक ।
विषयों की आश लगाने में संतोष हुआ किसको अब क ॥टेक॥

निवेल निर्धन असहायन का, निर्जन अति बुद्धव रोगिन का ।
बेकार व बुद्धि विहीनन का, है साथ दिया किसने अब तक ॥१॥

धन संपति यह तन मात पिता, सुत पौत्र महल सेवक बनिता ।
जिनमें जन मोह सदा करते, क्या साथ रहा किसका अब तक ॥२॥

इकला भ्रमता तू आता है, इकला जीकर मर ज ता है ।
भव भव जो साथ रहा उनमें, बतला क्या साथ रहा अब तक ॥३॥

यह नर भव सत्कुल जैन धर्म, शिव साधक नव पद सत्य धर्म ।
दुर्लभ है 'मनोहर' न चेते, जग मांहि भ्रमोगे फिर कब तक ॥४॥

(१०)

करना हो सो करलो, फिर मरना होगा ॥टेक॥

मर्जी हो तो पुण्य कमालो, या पापों का भार बढ़ालो ।
निश्चय है कर्मों का फल पाना होगा ॥करना०॥१॥

दिल में चाहे भोग बसा लो, या सर्वज्ञ हितंकर ध्यालो ।

खोटे सांचे मन का फल पाना होगा ॥करना०॥२॥
 पर में मिथ्या निज रुचि भालो, या शिव पथ में रुचि प्रगटा लो ।
 भूठी सांची रुचि का फल पाना होगा ॥करना०॥३॥ .
 चाहे देव शास्त्र गुरु ध्यालो, कुगुरु कुदेव कुशास्त्र मनालो ।
 सत्य असत ध्यानों का फल पाना होगा ॥करना०॥४॥
 निद्य कठोर अहित बच बोलो, चाहे मिष्ट सरस हित बोलो ।
 दृष्ट इष्ट बचनों का फल पाना होगा ॥करना०॥५॥
 लिस रहो विष्णों में मन भर, या धारो व्रत त्याग 'मनोहर' ।
 अविरति व्रत करने का फल पाना होगा ॥करना०॥६॥

(११)

मन भावन मन भावन श्री मुनिवर ध्यालो रे ॥टेका॥
 समता शांति समाधि भजतहै ओड़ जगत जंजाल ।
 सुर नर इन्द्र नरेन्द्र उरग पति नावत चरणन भाल ॥१॥
 कंचन कांच वरावर माने, निन्दन बन्दन घात ।
 महल मसान संपदा विषदा में, नहिं हर्ष विषाद ॥२॥
 शीत समय सरिता तट ध्यावत, रंच नहीं मन खेद ।
 उषण काल संतस शिला पर ध्यावत स्वपर विभेद ॥३॥
 वरपत मूसलधार दमकिनी, दमकत शीतल व्याल ।
 तच गुरु देव वृक्ष तल ध्यावत आतम देव विशाल ॥४॥
 जग हित कारी आत्म पुजारी, काटत कर्म कराल ।

मन बच काय संभाल 'मनोहर', तिन पद नावो भाल ॥५॥

(१२)

आपहि भूल फिरै, अपन को आपहि भूल फिरै ॥टेका॥
ज्यों मृग नाभि गंध अज्ञानी, बन बन धाय फिरै ।

सिंह कूप जल निज छाया लखि, तट तट फिरत गिरै ॥१॥
कपि घट में मोदक मुट्ठी नहिं, खोलन चाह करै ।

यकरै को भ्रम मान भगै, पर कर कैसे निकरै ॥२॥

तू तो ब्रह्म मगर आशा को, पाशा बांध फिरै ।

आशा तज लख रूप 'मनोहर', शिव की राह धरै ॥३॥

(१३)

भोगे तो भोग क्या हैं, भोगों ने भोगा हमको ।

इन भोग ही के कारण, कर्मों ने धेरा हमको ॥टेका॥
हम सोचते बड़ा सुख धन धाम मान जन का ।

सुख का बहाना करके छोड़ेगा पुण्य हमको ॥१॥

हम सोचते बड़े हैं इनसे उमर बड़ी है ।

कर कर बड़ा बड़ा ये खा लेगा काल हमको ॥२॥

जिस तन को सजाते हैं इतराते रूप लखकर ।

सेवायें करा कर ये छोड़ेगा देह हमको ॥३॥

पितु मात भ्रात नारी सुर संपदा भि सारी ।

मोही बना बना सब ओड़ेंगे कभी हमको ॥४॥
तन जन चमन खजाने साथी न हों 'मनोहर' ।
इक धर्म ही हितू जो होगा सहाय हमको ॥५॥

(१४)

है काम नाम में देव लगाया किसने ।

ये तो प्रधान उनमें हिंसक हैं जितने ॥टेका॥
ये जीव रूप मछली पर संकट डारे ।

जिन धर्म उदधि से बाहिर फैक निकारे ।
नारी तन पल के काँटे पर लटकावें ।

संभोग भाड़ में बारहिं बार झुजावें ॥१॥
जैसे कोई बैरी मंत्र प्रयोग चलावे ।

तो नेत्र घुमे दिल अमे भूमि गिर जावे ॥
त्यों काम शत्रु के मंत्र वशी दुख पावे ।

पावें विषदायें निज विज्ञान गमावे ॥२॥
यें ठगियों का शिर मौर जाल फैलावे ।

संगीत सुना तन रूप दिखा ललचावे ॥
डाकू भी पक्का जग कू ये डरपावे ।

ब्रह्मा महेश से ऋषि का ज्ञान लुटावे ॥३॥
जिस काम दृष्ट से जग व्याकुलता पावे ।

उसके विनाश का मार्ग गुरु बतलावे ॥

चिद्रूप 'मनोहर' जो अपना लख जावे।

वो काम शत्रु का शत्रु सुभट बन जावे ॥४॥

(१५)

रोवत काय फिरै, अरे मन रोवत काय फिरै ॥टेक॥
पुण्य विपाक विषय सुख ललचा नाना केलि करे।

पाप उदै दुख होत न्याय है फिर क्यों शोक करे ॥१॥
कहत रहत निश वासर सुख कम दुख जग मांही खरे।

जो कहते थे सोई भयो क्यों अनहोनी उचरे ॥२॥
पर समझावन बनत सयाने पंडित शील भरे।

वह चतुराई कहां गई अब काहे विष्ट डरे ॥३॥
रुदन हास तेरो कर्तव नहिं क्यों अम मान भरे।

जो तू ब्रह्म ब्रह्म सो तू है निश्चय नय विहरे ॥४॥
ज्यों गजराज शौर्य श्रद्धा लख निश्चय नय विहरे।

निज अनंत बल सोच 'मनोहर' निज विश्राम करे ॥५॥

(१६)

धर्म के खातिर सहज कुर्बान होना सीख लो।

प्राण जायें जाँय पर शिवमार्ग पाना सीख लो ॥टेक॥
अकलंक औ निकलंक कैसे साहसी ज्ञानी हुए।

वीर वर निकलंक सा बलिदान होना सीख लो ॥१॥

स्यात् तन भखते गये पर ध्यान को जोड़ा नहीं ।

धीर वर सुकुमाल मुनि सा धीर बनना सीख लो ॥२॥

लोहभय संतप्त भूषण दुष्ट पहिनाते गये ।

थिर रहे पांडव यथा थिर चित्त होना सीख लो ॥३॥

ज्ञान दर्शन ग्राण तेरे सो न जा सकते कहीं ।

हो अभय अनुभव मधुर रस स्वाद लेना सीख लो ॥४॥

इन्द्रियों को ग्राण माने ये सदा मिलती रहीं ।

धर्म ही दुर्लभ 'मनोहर' धर्म करना सीख लो ॥५॥

(१७) [पूर्व रचित]

अचल अपल दग ज्ञान सुख बल अनन्त के ईश ।

परम धरम वक्ता नम् हस्त जोड़ धर शीश ॥१॥

चाहूं नहिं धन सम्पदा चाहूं नहिं सम्मान ।

चाहूं नहिं संसार सुख चाहूं आतम ज्ञान ॥२॥

चाहूं नहीं सम्पदा भूरि होवे, चाहूं नहीं पौत्र सुतादि होवे ।

चाहूं नहीं क्लेश न पास आवे, चाहूं नहीं विष्टप कीर्ति गावें ॥३॥

चाहूं नहीं मान बड़ाई होवे, चाहूं नहीं लौकिक सौख्य होवे ।

चाहूं नहीं इन्द्र प्रतीन्द्र होऊं, चाहूं नहीं राज्य विशाल जोऊं ॥४॥

चाहूं नहीं चक्र गदादि पाऊं, चाहूं नहीं सुन्दर नार पाऊं ।

चाहूं नहीं पुण्य उपार्जना हो, चाहूं नहीं वित्त प्रसारणा हो ॥५॥

चाहूं नहीं लोक विशाल माने, चाहूं नहीं बुद्धि विशिष्ट जाने ।

चाहूं नहीं मर्त्य आमर्त्य ईशा, चाहूं नहीं होउँ राजा कणीशा ॥६॥
 चाहूं नहीं अष्टक ऋद्धि होवे, चाहूं नहीं सर्वक सिद्धि होवे ।
 चाहूं नहीं लोक वशी हो मेरे, चाहूं नहीं लौकिक पाऊं फेरे ॥७॥
 चाहूं यही आतम शुद्ध होवे, चाहूं यही राग न लेश होवे ।
 चाहूं यही ज्ञान विशिष्ट होऊं, चाहूं यही कर्म विमुक्त होऊं ॥८॥
 चाहत हूं निज महा गुण, नहिं चाहूं कुछ और ।
 कहत 'मनोहर' स्वल्पमति, करदो आत्म ठौर ॥९॥

(१८) [पूर्व रचित]

कर्म की चाल बड़ी न्यारी,
 नारायण लक्ष्मण को रावण ने शक्ति मारी ।
 चकित हो गये सब नरनारी,
 कर्मन का है चक्र कठिन इसके वश संसारी ॥टेक॥
 यदपि मृत्यु लक्ष्मण के द्वारा रावण की गई ।
 होनहार घट सके न तिल भर बढ़े न पल राई ॥

लक्ष्मण को मूर्छा आई ॥
 रामचन्द्र बलभद्र विलापे हा लक्ष्मण भाई ॥१॥
 धन्य विशल्या महा पुण्यवंती विमान आई ।
 उनके परसित जल स्पर्श से शक्ति गई भागी ॥

विशल्या लक्ष्मण ने व्याही ॥
 फिर रावण के सन्मुख होकर किया युद्ध जारी ॥२॥

रावण ने लक्ष्मण के बध को चक्र रत्न ध्याया ।

दे प्रदक्षिणा तीन हाथ नारायण के आया ॥

देव जयकार करें भारी ॥

सुर सहस्र हैं जिसके रक्षक तिसके अधिकारी ॥३॥

लक्ष्मण ने उस चक्र रत्न से रावण को मारा ।

सीता जी का संकट टाला वही हर्ष धारा ॥

हर्ष सुरनर खण्ड को भारी ॥

दयावंत, गुणवंत, संत भये सब के अधिकारी ॥४॥

पुण्य पाप के उदय जीव ये सुख दुख को पावे ।

जान 'मनोहर' पुण्य पाप फल धर्म हृदय लावे ॥

नम् जिन पाई शिवनारी ॥

अनुपम ज्ञान शक्ति दर्शन सुख के प्रभु भंडारी ॥५॥

(१६)

प्यारी विषदाओ आओ ।

रति निद्रा में सोये जन को बारंबार जगाओ ॥टेका॥

संपति को छल जान न पायो याने बहुत रुलायो ।

आशहिं आशहिं ज्ञान गमायो आशहिं आश ठमायो ॥१॥

करुणा तेरी पाकर पांडव कर्महिं मजा चखायो ।

गज कुमार से बहुते जन को तूने शिव पहुंचायो ॥२॥

आश करी संपति की अब तक टुकड़ा नेक न पायो ।

आशा तेरो सुखद 'मनोहर' के बन यही समायो ॥३॥

(२०)

अपनी भूल सो धोखा खावे । पर को व्यर्थ हि नाम लगावे ॥टेक॥
 तृष्णा को दुखदाई मान गर तू नहिं नेह दिखावे ।
 क्या धन में क्या परिजन में दम तोकूं आन संतावे ॥१॥
 तू तू ही पर पर ही समझे और विकल्प न लावे ।
 क्रोध मान माया जबरन फिर कैसे तोहि फँसावे ॥२॥
 नित्यानन्द प्रदेश देश तब तद्गुण परिजन ध्यावे ।
 निरचय जान 'मनोहर' कबहुं आकुलता नहिं आवे ॥३॥

(२१)

सद्गुरु वार २ समझावे, पैतू हित उपदेश न भावे ॥टेक॥
 राग आग की ज्वाला से जल, बना रहा अब तक तू व्याकुल ।
 राग तजो, त्याग भजो, नित्यानन्द स्वराज्य सजो,
 मन परवशता मिट जावे ॥१॥
 जग वैभव है कपट नजारे, भव बन में भटकावन हारे ।
 लोभ तजो, तोष भजो, निर्विकल्प विज्ञान सजो,
 मन परवशता मिट जावे ॥२॥
 राग लोभ दो दुर्गुण कूटे, कामादिक की संतति दूटे ।
 आर्ति तजो, शांति भजो, पाले अविचल राज्य 'मनोहर,'
 परवशता मिट जावे ॥३॥

(२२)

सांचो कौन धर्म हम जाने । जो जिस कुल उत्पन्न भये वे,
 कीरति ताहि बखाने ॥१॥
 बौद्ध शैव वेदान्ति भाट जेमिनि मीमांसक यौगा ।
 स्वभत तच्च आचरण बतावे, किसकी सरधा जोगा ।
 किसकूँ हम दुखहारी माने ॥२॥
 जो खुद को प्रतिकूल जचे, नहिं काहु पे अजमावे ।
 यही कसोटी कर्तव्यों का सार असार बतावे ।
 फिर क्यों व्यर्थ विवाद समाने ॥३॥
 तनिक क्लेश में दुखित होंय हम क्यों पर कूँ उपजावे ।
 पर को भूठ कुशील बुरो लखि कैसे चित्त लगावे ।
 फिर क्यों जानि रहे भरमाने ॥४॥
 पर को राग द्वेष भारी लखि भोंदू ताहि बतावे ।
 राग द्वेष के सेवक फिर हम क्यों भोंदू न कहावे ।
 अपनी भूलहिं हम दुख ठाने ॥५॥
 जो पर को संहार न चाहे विषय कषाय न भावे ।
 ऐसे ही निर्दोष देव का ध्यान विपत्ति मिटावे ।
 उनकी भक्ति न क्यों हम राने ॥६॥
 इच्छा ही दुख जग विपदा का मूल निदान प्रमाने ।
 उसी भूल के नाश अर्थ निज ध्यान 'मनोहर' ठाने ।
 सांचो यहां धर्म सरधाने ॥७॥

(२३)

पागल हो गये कविगज ।

अशुचि तन को चन्द्र मुखि कहते न आई लाज ॥टेका॥
देह क्या है मूत्र विष्टा कीट का घर द्वार ।

मांस पिंड उरोज कुंदे हेम घट उनहार ॥१॥
यूक को संवास कुंतल जिन्हें दें सन्मान ।

अशुचि घर के थंभ जंघहिं कहत केर समाज ॥२॥
एक तो स्वयमेव अंधा जगत जीव समाज ।

आंख में फिर राग धूली डालते किह काज ॥३॥
मोहियों के मित्र बन फिर कबहुं धो सुलभाय ।

सत्य कवि नहिं तो 'मनोहर' रटेगा यह गाय ॥४॥

(२४)

मन विषयनि मत ललचावे ।

इनही के कारण भव भव में जग आकुलता पावे ॥टेका॥
मान करी खांडे को करिणी, गिरे गर्त में कामी व्यसनी ।
बाधत व्याध निगड़ नत चलनी, भरत दासता तव सुख दलिनी ।

जननेन्द्रिय के विषय चाह में अपने प्राण गमावे ॥१॥
मीन मास के स्वाद चाह में, कंठ फसावत लौह फांस में ।
दुखी होय धीवर के वश में, बहु व्याकुल हो निर्जन थल में ।

रसनेन्द्रिय के विषय चाह में अपने प्राण गमावे ॥२॥

सुरभि गंध का लोभी पट्टपद, मीलित नीरज में सह आपद ।

जिहि खा जाते बनचर चौपद, पै नहिं छेद भगे नीरज छद ।

प्राणेन्द्रिय के विषय भोग में अपने प्राण गमावे ॥३॥
दीप ज्योति के तीव्र लोभ में, पतत पतंगा पवन मित्र में ।
आकुल व्याकुल होय निधन में, भस्म करे निज तन
इक छिन में ।

नेत्रेन्द्रिय के विषय भोग में अपने प्राण गमावे ॥४॥
सरस भधुर संगीत श्रवण में, मृग पकड़ा जावे कानन में ।
पड़ता हिंसक के बन्धन में, दारुण दुख भोगे जीवन में ।

कर्णेन्द्रिय के विषय चाह में, अपने प्राण गमावे ॥५॥
इक इन्द्रिय विषय चाह में, प्राण गमाये हैं जीवोंने ।
जब नर तू पांचों के वश में, कैसे हित पावे जीवन में ।

वीर 'मनोहर' वही विषय की पाश छेद सुख पावे ॥६॥

(२५)

दोहा:- पर तू हो सकता नहीं, तू न कभी पर होय ।

तेरा पर पर का न तू क्यों पर को तू रोय ॥

बन्द:- मेरा मेरा मानना ही तो तिहारी भूल है ।

बस यही ही भूल तेरी वेदना का मूल है ॥टेका॥

तेरा कुछ था है न होगा व्यर्थ क्यों ललचारहा ।

लालसामय शल्य ही तो बनरहा तिरसूल है ॥१॥

तूने जिनको देखा अब तक क्या सभी जिन्दा रहे ।

देखते हो फिर पड़ी क्यों तेरी मति पर भूल है ॥२॥

खैर जब बेहोश था अब ज्ञान का उपयोग कर ।

इस कुमति से ग्रीति तोड़ो तो सुमति अनुकूल है ॥३॥

तात बान्धव नार सुत क्या मित्रजन क्या संपदा ।

पाप का संकेत लखि बन जाय सब प्रतिकूल है ॥४॥

पाप के फल में कभी दोना किसी ने साथ है ।

तू शरण तेरा 'मनोहर' और सारी भूल है ॥५॥

(२६)

† अपनो दुख किसे बतलाँय ।

हास को हैं बीस भैया होत कौन सहाय ॥टेक॥

धन स्वजन घर सब कळ हैं, सूच है व्यापार ।

पै न जाने दिल विकल क्यों चैन है न लगार ॥१॥

सोचता हूं साज सुख का मिला आज समाज ।

क्या सदा साथी रहेगा मेरा मन का राज ॥२॥

कौन पहिले बिछुड़ जैहै मैं व ये सुख साज ।

किस तरह दुखिया बनै है मोह खल सिरताज ॥३॥

दिल विकल इस सोच में है सत्य कौन उपाय ।

कौन का शरण गहूं चिन्ता कहां नश जाय ॥४॥

और की तो क्या कहानी जब अथिर यह काय ।

तुम तुम्हीं के शरण तुम ही में बसे सदृष्टाय ॥५॥
 शिव निराकुल ज्ञान चेतन आप में मति धार ।
 मिथ्र सब जानो 'मनोहर' होयगें दुख बार ॥६॥

(२७)

हे कर्म तेरी लीला निराली है ॥टेका॥
 रामचन्द्र राजा दशरथ के प्रणां से भी ध्यारे थे ।
 तेरी तिरछी नज़र हुई तो बन के बने दुलारे थे ।
 सीता हरी गई जब बन में हुए बहुत मतवाले थे ।
 रावण की शक्ति से लक्ष्मण भये बेहोश विचारे थे ।

सीधी नज़र भई जब कर्मों का लंका लो राज्य भयो ॥१॥
 धर्म राज घलवान धनुधर्मी न्यायी पांडव अभिराम ।
 तेरी तिरछी नज़र हुई तो भटके बन बन तज आराम ।
 कांटे कंकण चुभने के दुख भूरि सहे तहँ द्रोपदि ने ।
 भूख प्यास सदीं गर्मी की सही बेदना तब सब ने ।

सीधी नज़र भई जब कर्मों की सर्व साम्राज्य भयो ॥२॥
 कामदेव श्रीपाल भूप जिन में बल सम कोटी भट के ।
 तेरी तिरछी नज़र हुई तो कुष्टी बन बन भटके ।
 हाथ गले पग गले अंग से रुधिर राध टप टप के ।
 कुपित भूप ने व्याह दिया पुत्री को था दुखिया लख के ।

सीधी नज़र भई जब कर्मों की कंचन रूप भयो ॥३॥

गदी पै बैठ कोई करते आराम, दीन,

दिन भर जब काम करें पेट भर पाते हैं ।

कोई रेल मोटर स्पेशल हवाई यान,

सैर करत कोई शिर बोझ लाद जाते हैं ।

कोई जन हसत कोई रोवत सिर पटक पटक,

कोई दग्गा देते हैं कोई दग्गा खाते हैं ।

कोई नर कलह करत कोलाहल केलि करत,

कोई नर हुक्म देत कोई दंड पाते हैं ॥४॥

कभी सुखी नर कभी दुखी हो कभी वियोगी योगी हो ।

मान करे अपमान सहे बहु कभी निरोगी रोगी हो ।

परधन छीन चतुर कहलावे चुगल बनें खल पापी हो ।

कर्म चक्र चक्रकर में फंस कर नाना विधि संतापी हो ।

जो बच गये कर्मों से 'मनोहर' के मन वास करे ॥५॥

(२८)

ओ जगवासी, अब एक बार, दे दो मन, ईश्वर भक्ती में ।

यह भव पाशी, रति अरति टार, छेदो मन रुचिकर मुक्ती में ॥टेक॥

सुत बन्धु नार, सम्पति अपार, बहु कारबार मिले बार बार ।

ओ अभिलाषी, इच्छायें टार, दे दो मन ईश्वर भक्ती में ॥१॥

यह जग असार, दुख जलाधि बार, दुख सहत लार, तू निर्विकार ।

ओ अविनाशी, शंकायें टार, दे दो मन ईश्वर भक्ती में ॥२॥

मिथ्या विचार, 'मनहर' निवार, अन्तर निहार, शिवमग विहार ।
हो शिव वासी वसु विधि निवार, सुखलह अपार निज मुक्ती में ॥३॥

(२६)

शिवपथ की ओर चलदे दुखड़े सहोगे कब तक ।

सोये अनादि से हो सोवोगे और कब तक ॥टेक॥
जग में न इष्ट कोई विरहाग्नि में जले मत ।

रोये अनादि से हो रोवोगे और कब तक ॥१॥
नहि हैं अनिष्ट कोई, भूठे हैं ख्याल तेरे ।

माना अनादि से हैं मानोगे और कब तक ॥२॥
तन रोग वेदना क्या निज भाव ज्ञान का है ।

तड़फे अनादि से हो तड़फोगे और कब तक ॥३॥
संसार है अहितमय तिज मात्र भी नहीं सुख ।

चाहा अनादि से है चाहोगे और कब तक ॥४॥
यह आर्तध्यान पहुंचा देता नरक 'मनोहर' ।

दुखिया अनादि से हो होवोगे और कब तक ॥५॥

(३०)

न जाना आपको भगवन हमारी भूल थी भारी ।

मगर तुम जानते थे दास को करुणा न क्यों धारी ॥टेक॥
जिन्होंने आपका शरणा लिया भव सिंधु तिर तिर गये ।

न चूको दुख बचाने से हमारी आज है भारी ॥१॥
 मैं दोषी हूँ मगर तुमने अधम से भी अधम तारे ।

न चाहूँ इन्द्र की संपति मुझे तो मुक्ति है प्यारी ॥२॥
 न मेरा मन जगत में है यहां तो मतलबी दुनियां ।

तुम्हें मन दे चुका चाहे रुक्षाओं सुध लो या मेरी ॥३॥
 न जाऊं पास औरों के तुम्हीं में मन बसा मेरा ।

मरुं जीऊं रहूँ कुछ भी मुझे तो आश है भारी ॥४॥
 तनिक भी दर्श दे जावो न औगुन लख 'मनोहर' के ।

तुम्हारा क्या बिगड़ता है मुझे संपति मिले भारी ॥५॥

(३१)

रे मन राख मन समझाय ॥टेका॥
 सकल ग्राण मत विकल होन दे दुर्लभ यह नर काय ।

नर भव पाकर धर्म कमावो क्यों मन में पछताय ॥१॥
 तुम जानत हम ही पर आपद आपद सब पर होय ।

आपद के इस लोक में आपद का क्षय कैसे होय ॥२॥
 कोई पैदा होत मरत कोइ बालापन मर जाय ।

जीने का क्षण नहीं भरोसा नशे अथिर यह काय ॥३॥
 अथिर अशुचि तन में भी रह थिर शुचि समकित उपजाय ।

करो 'मनोहर' भट चतुराई सांचा बणिन उपाय ॥४॥

(३२)

मेरी चुगली श्री जिनराज से किसने की है ।

मोह बैरी की शरारत ही मुझे दिखती है ॥टेका॥
दूँढते दूँढते जिनराज को अब लख पाया ।

देखूँ उस मोह की अब शान कहाँ रहती है ॥१॥
नाथ उस मोह ने है भूठ भिड़ाया तुमको ।

शक्ति के रूप में मम ज्योति बनी रहती है ॥२॥
पहिले तुमको भी इसी रीति सताया इसने ।

इसके आदत की कभी खोट नहीं हटती है ॥३॥
मोह मर्दन के लिये सर्व समग्रम पाया ।

नाथ ! सद्गुर्कि तिहारी ही रही कमती है ॥४॥
देव तुम ही मैं रहे भक्ति घड़ी पल निश दिन ।

तो 'मनोहर' को न डर मोह का इक रत्ती है ॥५॥

(३३)

मिटाना चाहो तो जिनवर हमारे दुख मिटा देना ।

तिराना चाहो तो जिनवर भयोदधि से तिरा देना ॥टेका॥
न हिम्मत ब्रत तप करने की न समझूँ तत्व की चर्चा ।

फक्त समझूँ तुम्हीं साँचे तुम्हारा जाप जप लेना ॥१॥
न कोई पार भव जल का व साधन तिरने के ऊचे ।

न अपने बल तिर सक्ता हूँ तिरावो तो तिरा देना ॥२॥

विना व्रत संयम गुप्ती के न तिर सकता मैंने माना ।

मगर वह शक्ति तुम देते तिरावो तो तिरा देना ॥३॥

रट्टूंगा नाम तेरा तो उबागेगे न फिर कब तक ।

मुझे विश्वास है पूरा बचावो तो बचा लेना ॥४॥

'मनोहर' के दुख के हर्ता, तुम्हीं हो त्रिभुवन के स्वामी ।

हरा कर्मों ने मेरा धन दिलायो तो दिला देना ॥५॥

(३४)

अब के ऐसी दिवाली मनाऊं । कबहूं फेर न दुखड़ा पाऊं ॥टेका॥

ज्ञान रतन के दीप में तप का, तैल पवित्र भराऊं ।

अनुभव ज्योति जगा के मिथ्या, अन्धकार विनशाऊं ।

जासों शिव की गैल निहाहूं ॥१॥

निज अनुभूति महा लक्ष्मी का वास हृदय करवाऊं ।

निज गुण लाभ दोष टोटे का लेखा ठीक लगाऊं ।

जासों फेर न टोटा पाऊं ॥२॥

आन कुदेव कुरीति छांड के श्री महावीर चितारूं ।

राग द्वेष का मैल जलाकर उज्ज्वल ज्योति जगाऊं ।

अपनी मुक्ति तिया हर्षाऊं ॥३॥

अष्ट कर्म का फोड़ फटाका विजयी जिन कहलाऊं ।

शुद्ध बुद्ध सुख कंद 'मनोहर' शील स्वभाव लखाऊं ।

जासों शिव गौरी विलसाऊं ॥४॥

(३५)

ओ माया वाले, माया पै मत मरना ॥टेका॥

दो दिन की ये माया रानी, क्षण क्षण क्षण होत विरानी ।

गणिका से भी अधिक सयानी, क्या मन में लज्जाना ॥१॥

औरों का दिल दुख न जाये, मान हृदय में वस न जाये ।

भोगों में मन मत तड़फाये, दुष्टों का सँग तजना ॥२॥

दो दिन की यह संपति सारी, फिर ज्यों का त्यों दीन दुखारी ।

फिर भी सुख कम दुख है भारी, मत होना मस्ताना ॥३॥

ज्ञान तिहारा बिगड़ न जाये, बिगड़ बिगड़ कर विघट न जाये ।

माया के फन्दे मत जाये, तेरा ज्ञान खजाना ॥४॥

इक दिन यह माया खो लोगे, बड़े में पापी बन लोगे ।

नर्क वास के दुख भोगोगे, क्लेश जहाँ है नाना ॥५॥

माया पाकर धर्म कमाओ, दुखियों का दुख दर्द मिटाओ ।

पापों का मत भार बढ़ाओ, मान 'मनोहर' कहना ॥६॥

(३६)

मेरा मन बेकरार ॥टेका॥

परिजन पर प्रकट दिखत, विधि फल नित चखत रहत ।

अपनि अपनि विपति सहत, होता नहिं कोई लार ॥१॥

सुख तिल भर सुनत रहत, पर्वत सम विपत दिखत ।

दिवस उभय जियत मरत, किन सों मैं करूं रार ॥२॥

'मनहर' भज शरण धरभ, जिनवर सम सुरस सदन ।
अतन अमल वसु गुण धन, मुनिवर जग तिमिर हरण,
यही चार सर्व सार ॥३॥

(३६)

मन की बात मनहिं जानत है । हास करन को सब जग बैठो,
सांची को मानत है ॥टेका॥
धन संपति घर बांधव नारी में नहिं मन पागत है ।
जामें मन पायो यदि कहदू सब जन मूठ कहत है ।
घर को खोज मिटौ मानत है ॥१॥

संयम सो अनुराग् तो नर कुल की हानि कहत है ।
पर सो लिपटू तो नरभव का फेर न लाभ मिलत है ।
सुख भी रंच नहीं दीखत है ॥२॥
करो 'मनोहर' जो करना हो निश दिन आयु घटत है ।
पर की बातों में क्यों आते दो दिन सब जीवत है ।
फिर नहीं यो अवसर पावत है ॥३॥

(३८)

दुनियां के सब महिमान रिभाऊं किसे प्रेम से ॥टेका॥
जीने का फल मर जाना, फिर समय न वापिस आना,
कब जाना, क्या पाना, होगें सब वीराना ।

क्यों नचूं बन कर दिवाने, लालसावों के इशारे, इशारे ॥१॥
विपदायें आती जाती, अपना पौरुष दिखलाती,
मदमाती, इतराती, संपति को बिनशाती ।

क्यों सुखी दुखिया बनूं मैं, कल्पना के सब नज़ारे, नज़ारे ॥२॥
आशा में करता वासा, पर प्यासा ही का प्यासा,
अभिलाषा, यह पाशा, देती दुख ये आशा ।

क्यों बनूं इसका भिखारी, जो भिखारी वे दुखारे, दुखारे ॥३॥
सब ही का दिल अपना सा, है जग में सुख कितना सा,
सपना सा, आभासा, फिर फिर होत निराशा ।

अब 'मनोहर' मन मनाले, वीर वाणी के सहारे, सहारे ॥४॥

(३६)

खेल ले ऐसी होरी । मिले सुख संपति तोरी ॥टेका॥
अष्ट कर्म ईर्धन संचय में तप की अग्नि लगावो ।
शुक्ल ध्यान की पवन चलाकर ऊंची ज्वाल बढ़ावो ।

हो ग्रकाश चहुं ओरी ॥१॥
निश्चय चरित सुधा सरसा कर सारी भस्म बहावो ।
निज परिणाम थान निर्मल कर सुषमा सर्व सजावो ।

हो प्रसन्न शिवगौरी ॥२॥
साधर्मी जन सचि परिजन तिन में प्रीति बढ़ावो ।
फैक प्रमोद गुलाल ज्ञान से निज पर अंग रंगावो ।

नमों जिन शिव रति जोरी ॥३॥

आतम अनुभव भोजन रचकर खावो और खिलावो ।

नित्यानंद अमंद 'मनोहर' सार अमर पद पावो ।

रमे चित मंगल ओरी ॥४॥

(४०)

चेतन अपनो रूप निहार ॥४॥

विषय कथाय घोर दुखदाई, समरस अविनश्वर सुखदाई ।

एक विवेक तराजू लेकर इनका अन्तर तार ॥५॥

मिलत अनेक पथिक तरु के तट, रहत क्षणेक बिछुड़ते हैं भट ।

त्यों जगजीव वसत संग कुब्द दिन, मरते अपनी बार ॥६॥

पर के काज विकट दुख सहता, पाप बांध उनका मन भरता ।

निजकृत पाप उदय फल भोगे, होगा कोइ न लार ॥७॥

तू विद्येश अकाम सनातन, जन्म मरण से रहित सुपावन ।

तू अनन्त सुख का सागर जब, न हो मोह की रार ॥८॥

दुख की खान मोह है भाई, समता अचल परम सुखदाई ।

बनो 'मनोहर' समरस स्वामी, तज करि सब तकरार ॥९॥

(४१)

ज्ञान नर काहे नाहिं करे ॥टेका॥

ज्ञान बिना नहिं कोटि महा तप आतम शुद्ध करे ।

ज्ञान बिना किरिया सब भूठी ज्ञानहिं गुण प्रसरे ॥१॥
चेतन तू जड़ पुदग्लादि है इनमें मोह करे ।

देह विनाशी तू अविनाशी पर निज मति पकरे ॥२॥
माया कोष लोभ मद कारण पावे क्लेश खरे ।

भोगे बार बार भौगादिक फ़िर भी चाह करे ॥३॥
पाये दुख सो भोग लिये अब चित्त विवेक धरे ।

जानो रूप विभेद 'मनोहर' लातें काज सरे ॥४॥

(४२)

कहाँ तूने ऐसो वेश बनायो ॥टेका॥

नरक निगोदन पशु योनिन में बार बार भटकायो ।

मनुज स्वर्ग सब में ऋम आयो सम्यक् ज्ञान न पायो ॥१॥
तू अनग्न गुण का सागर है दोष कहाँ ते लायो ।

पर पद प्रीति गीति रस द्वूबे सत्य विवेक न पायो ॥२॥
समता शांति परम अमृत रस जो नेज परिणति गायो ।

दूर रहा अज्ञान धारि तू विषयन में नित धायो ॥३॥
राग द्वेष तज अब सम रस के परम रसिक हो जायो ।

देख 'मनोहर' साथ न जै कुछ अरु कुछ संग न लायो ॥४॥

(४३) ✓

भई ज्ञान नयन की खोलो, यह भूठा सब व्यवहारा ॥टेका॥

मेरा तन ये मेरा धन है, तात पुत्र वनितादि कुटुम्ब है ।

महल राज्य बहु सेवक गण हैं, मिथ्या मत ये तेरा ॥१॥

अन्त समय जब आ जाता है, पड़ा ठाठ सब रह जाता है ।

आया साथ न फिर जाता है, जाय न तन भी तेरा ॥२॥

निर्धन धन से हीन दुखी हैं, तृष्णावश धनवान् दुखी हैं ।

जग में जीव न कोई सुखी है, सुखी सिर्फ़ क्रषिराजा ॥३॥

सुख में साथ सभी नर करते, स्वारथ वश ही प्रेम उमड़ते ।

विपदा काल विमुख सब होते, स्वारथ का संसारा ॥४॥

चेतो मोह नींद अब छोड़ो, नाता सिर्फ़ धर्म से जोड़ो ।

जग जंजाल 'मनोहर' तोड़ो, धर्म सदा रखवारा ॥५॥

(४४)

बारह ब्रत श्रावक के पालो बिन ब्रत पशु सम जीना है ।

पाले ब्रत श्रावक के जिनने मुक्ति रमा को चीना है ॥टेक॥

पंच अणुब्रत सभ शील ये बारह ब्रत हैं सुखदाई ।

तिनके प्रथक् प्रथक् अब वर्णन सुनो भव्य दे चित लाई ॥

प्रथम अहिंसा अणुब्रत पालो, त्रस हिंसा का त्याग करो ।

बिना प्रयोजन स्थावर का भी नहीं कभी विघ्वंस करो ॥१॥

हित मित बचन मधुर नित बोलो, अहित बचन का त्याग करो ।

अप्रिय कटुक कठोर शब्द का कभी नहीं उपयोग करो ॥

बिना दिये रक्खी या भूली अन्य वस्तु मत ग्रहण करो ।

परनारी पर पुरुष देह में रंच मात्र नहिं नेह करो ॥२॥
 खेत मकान सुवर्ण दाम भोजन सब का परिमाण करो ।
 मर्यादा से हीन रहे तो भी न कभी संक्लेश करो ॥१॥
 पर वैभव लख चाह करो भत विस्मय का नहिं भाव करो ।
 पीकर के संतोष सुधारस आकुलता का ताप हरो ॥३॥
 दिग्ब्रत देश अनर्थदण्डब्रत यें तीनों गुणब्रत भाई ।
 तिनके प्रथक् प्रथक् अब वर्णन सुनो भव्य दे चित्तलाई ॥
 आजीवन कछु देश क्षेत्र की अवधी ले व्यवहार करो ।
 वाह्य क्षेत्र में पत्री तक से भी न ज़रा सम्बन्ध करो ॥४॥
 वर्ष मास दिन घड़ी पक्ष तक क्षेत्रों की मर्यादा लो ।
 ले मर्यादा वाह्य क्षेत्र में जाने का परिहार करो ॥
 करो पाप उपदेश कभी नहिं हिंसा के हथियार न दो ।
 गर कोई हिंसक मांगे केवल मिष्ट वचन कह विदा करो ॥५॥
 नहीं विचारो किसी जीव को किसी तरह की हानी हो ।
 सुनो नहीं जो हिंसा कारक पुण्य विनाशक वानी हो ॥
 हिंसक जीव न पालो बिन मतलब न कभी कछु कार्य करो ॥६॥
 जैन मार्ग अनुसार प्रवर्त्तों दुष्ट कर्म का नाश करो ॥७॥
 सामायिक प्रोषध अनशन उपभोग भोग का नियम तथा ।
 अतिथि दान ये चौ शिक्षाब्रत कहूं कही मुनि नाथ यथा ॥
 सुबह दुपर सन्ध्या की बेला सामायिक से ध्यान करो ।
 एकाशन उपवास अष्टमी चतुर्दशी के दिवस करो ॥८॥

भोजन वाहन वस्त्रादिक की मर्यादा जितनी कर लो ।
 उतने ही में काम चलाकर तृष्णा खाइं से बच लो ॥
 मुनि श्रावक आर्यिका श्राविका का समुचित सत्कार करो ।
 औषधि शास्त्र आहार दान दो विपदा का परिदार करो ॥८॥
 रोगी, दुखो, दीन, विधवायें, अरु अनाथ पर दया करो ।
 भीत जीव को शरण देकर अभय दान से तुष्ट करो ॥
 इन ब्रत का फल स्वर्ग विभव है, परम्परा से मुक्ति लहें ।
 कहें 'मनोहर' सौख्य हेत भवि जीव धर्म को नित्य गहें ॥९॥

(४५)

हरेंगे, वें नर कैसे कर्म हरेंगे ॥टेका॥
 दुःख पढ़े सब सुध आवत है ये ये पुण्य करेंगे ।
 दुःख गये फिर विसर जात सब मानों सुखहिं रहेंगे ।

वे नर क्या गंभीर बनेंगे ॥१॥

तप ब्रत में दुख मान संपदा परिजन में लिपटेंगे ।
 इष्ट नष्ट हो जाये तो रो रो अन्धे होय मरेंगे ।

वे नर कैसे धीर बनेंगे ॥२॥

पर की संपति देख मरें या आशहि आश करेंगे ।
 चाहे कोई मरे या जीवे मतलब सिद्ध करेंगे ।

वे नर क्या पर पीर हरेंगे ॥३॥

होवे आश विनाश 'मनोहर' ता संतोष करेंगे ।

नहिं तो ज्यों दुख भोगत आये वैसे दुःख रहेंगे ।
वे नर क्या सुख सीर भरेंगे ॥४॥

(४६)

चेतन कुमति की रति टाल ।

कुमति पर तिय दास को है यह जगत जंजाल ॥टेका॥
जनक मोह व मात माया की सुता विकराल ।
व्यसन इसके सात भाई कुटिल जिनकी चाल ।
पांचो पाप हैं रखवाल ॥१॥
क्रोध मद छल राग लालच कान इसके लाल ।
अरति रति ईर्ष्या कुसंगति सखिन का बहु जाल ।

जिनकी बात में विष प्याल ॥२॥
पाश बन्धन में चतुर अरु यार इसका काल ।
काल के मन आय जब तब करत भाल में साल ।

गिनता ज्वान, ढूँढ़ न बाल ॥३॥
तनिक नैन के सैन से दे कर्म फन्द विशाल ।
हरै तुव धन करै निर्बल देय क्लेश विशाल ।
क्यों नहिं करत अपनो ख्याल ॥४॥
कहत चेतन की विभूति सुमति दे दे ताल ।
मान कहना तो सकल तन डाल दूँ गुणमाल ।

तिहुं जग धरे तुव पद भाल ॥५॥

जगत क्या इक कुमति वेद्या का विशाल मुहाल ।

मन लुभाने को 'मनोहर' दिखत सज्जित माल ।

इन्द्रिय विषय पांच दलाल ॥६॥

(४७)

भैया धोखे में भत आना ॥टेका॥

जिनको तू परिवार कहत है वे मतलब की खाना ।

पाप करा मरघट में फूंके रहि जै है पछताना ॥१॥

जिसको प्यारी नार कहै तू या सम अरि नहिं आना ।

राध रधिर मल पूरित तन में होता मूर्ख दिवाना ॥२॥

जिसको तू धन संपति कहता वह है विपत्ति निधाना ।

तृष्णा का दृढ़ बन्धन बांधे क्लेश दिखावे नाना ॥३॥

पचेन्द्रिय के भोग विषय ये जिनमें रहो लुभाना ।

चखत मधुर विष फल सम लागे करि है दुर्गति नाना ॥४॥

आया मुट्ठी बांध 'मनोहर' हाथ पसारे जाना ।

दो दिन का यह खेल तमाशा मिट्ठी में मिल जाना ॥५॥

(४८)

यम राजा के देश काम भोग गादी विछा ।

सुख चाहन लबलेश चाह चादरा ओड़ कर ॥

धन रुखड़ की छांह मोह नींद बेहोश जन ।

ताहिं जगावन जाय साधु सरस समता सदन ॥

जाग रे जग हे मुसाफिर मोह में क्यों सो रहा ।
 ये करम ठग तेरे धन को लूटते क्यों खो रहा ॥टेका॥
 धन विभव के स्वप्न सारे देख कर मानी बना ।
 धन गिरा परिजन मग ये स्वप्न लखि क्यों रो रहा ॥१॥
 तेरे घर शिवथान को जाता महारथ ज्ञान का ।
 मनुष भव के समय जावे वक्त पर क्यों सो रहा ॥२॥
 ज्ञान रथ पाने को तू गर वक्त पर जगता नहीं ।
 तो समझ लेना विषय बन में भटकता ही रहा ॥३॥
 क्रोध गज मद सिंह छल आहि लोभ राक्षस है जहां ।
 काम शर बैधे वहां क्यों आलसी बन सो रहा ॥४॥
 दे सुगुरु को भक्ति पाले शिव टिक्कट वैराग्यमय ।
 रत्नत्रय पाथेय ले चल काल थोड़ा ही रहा ॥५॥
 क्षणिक छाया में पड़ा भव ताप की गर्मी सहे ।
 जग 'मनोहर' चल यहां यम भूमि में क्यों सो रहा ॥६॥

(४६)

सरासर स्वप्न सम सब शोर ॥टेका॥
 जिनका मुझ पर प्यार बना था, भारी आशागार बना था,
 दुनियां की लीला दिखला के वे गये किस ओर ॥१॥
 कामी स्वप्न विभव सुख भावे, निज निधि विसर विषय ललचावे,

लुट रहे हैं ज्ञान खजाना, कर्म आठों चोर ॥२॥
 समता निदियों में मश्ताने, लुटते हो जग में मनमाने,
 तेरी ज्योनि चन्द्रिका आगे, मोह का धन धोर ॥३॥
 छिन में राजा रंक सयाने, मूरख सुखिया दुखिया माने,
 छिन में नीच दीन कहलावे, छिन बनै शिर मौर ॥४॥
 ज्ञान भान की लाली आवे, मिथ्या निश का तिमिर विलावे ।
 मोह नींद से झट जग जाना, हो जावेगा भोर ॥५॥
 मोग योग पल मात्र 'मनोहर', कल्पित सुख में प्रेम नहीं कर ।
 मोह नींद तज सावधान बन, हो जा आत्म-विभोर ॥६॥

(५०)

तुम्हारा तुम बिन कौन सहाय ॥टेक॥
 क्या जन बान्धव क्या धन दौलत क्या घर दर क्या काय ।
 देते क्षण सुख देते क्षण दुख साथ न आयें जाय ॥१॥
 मित्र शत्रु कोई नहिं तेरा क्यों अम में बैराय ।
 तुम्हीं शत्रु जब होय विभावी, समता सो हित पाय ॥२॥
 राग द्वेष तज वीतराग सुख निज अनुभव सों पाय ।
 खुद ही में खुद राच 'मनोहर' विषयनि मत ललचाय ॥३॥

(५१)

तेरा जग में साथी कौन ॥टेक॥

बोलें बान्धव प्राण पियारे, सोचें माया होय सहारे ।

पुण्य विना सब होत दुखारे, यासों बैठो मौन ॥१॥

धन कन कंचन तन धन यौवन, धाम सदन वैभव बल उपवन ।

अन्त समय ये होत विगाने, पर्स चले जिम पौन ॥२॥

मोह महा धनधान हटा ले, ज्ञान भान किरणे प्रगटा ले ।

धर्म विना कुछ बोल 'मनोहर' साथ चलेगा कौन ॥३॥

(५२)

साजन कहना मेरा मान ॥टेका॥

माया वेश्या प्रेम युजारी, होकर अपना ज्योति विसारी ।

समता की सुध लेऊ कराऊं, साम्य सुधा रस पान ॥१॥

शान्ति सगित में आवो नहायें, तोष लहर में केले करायें ।

तन तन गुण भूषण पहिनायें, तिहुं जग देखे शान ॥२॥

लोक शिखर पर तुम्हें विठायें, आकुलता का ताप मिटायें ।

इन्द्र नरेन्द्र मुनोन्द्र सदा शिर नाय करें सन्मान ॥३॥

नित्यानंद निधान बतायें, पर पद दैन्य सकल विनशायें ।

स्वच्छ 'मनोहर' रूप सजायें, सुखमय शिव अमलान ॥४॥

(५३)

करलो जो मर्जी होवे, पर याद रख लो,

कर्मों का फल पाना होगा ॥टेका॥

चाहे इन हाथों से जीवों की हिंसा कर लो,
 भोलों की संपत्ति हर लो, सारे अन्याय कर लो ।
 चाहे तौ दान कर लो, धर्म कमालो ॥कर्मो का ०॥१॥
 चाहे इस जिहा से गाली अल्फाज़ कह लो,
 औरों की निदा कर लो, विषयों की बातें कह लो ।
 चाहे जिन बैन बोलो, प्रभु का गुण गालो ॥क०॥२॥
 चाहे इस मन्सा में पर का नुकसान सोचो,
 मतलब अरमान सोचो, दुख या अपमान सोचो ।
 चाहे कल्याण सोचो, ईश्वर को ध्यालो ॥क०॥३॥
 जिसका जो बीज बोये, उसका फल फूल होता,
 दुख का क्यों बीज बोता, खाता भव सिन्धु गोता,
 जीवन क्यों व्यर्य खोता, घेतो 'मनोहर' ॥क०॥४॥

(५४)

कलि का बहाना ले जन क्या पाप कर रहे हैं ।
 इसके ही फल में भाई संताप सह रहे हैं ॥टेका॥
 जिन्होनें अपने तन से पैदा किया व पाला ।
 कन्याये बैंच कोई घर धन से भर रहे हैं ॥१॥
 लेना छंटाक सत्रह देना छंटाक पन्द्रह ।
 माया के हेतु निश दिन अन्याय कर रहे हैं ॥२॥
 भोलों पे कोई भूठे ही जाल रोप देते ।

भूठी गताही देने तैयार हो रहे हैं ॥३॥

औरों का धन हड्डय कर मरताने बने जाते ।

मतलब के लिये गुरुओं को दोष लगाते हैं ॥४॥

असहाय निर्वालों को दे त्रास फूल करके ।

अपनी बड़ाई करके एंठों में मर रहे हैं ॥५॥

व्यभिचार पाप करने में मानते भलाई ।

माता बहिन न समझें वे मोत मर रहे हैं ॥६॥

मन कुछ कहे करें कुछ इनको भिड़ाया उनको ।

मतलब के लिये पापी बदनाम हो रहे हैं ॥७॥

जो घास फूस खाकर हो पेट भरते अपना ।

उनके गले पे निर्दय हथियार धर रहे हैं ॥८॥

तृण खाके पेट भरते रहते हैं विजन बन में ।

उन बेकसों पे गोली का वार कर रहे हैं ॥९॥

औरों का मांस खाकर बनते हैं लाट साहब ।

अचरज बड़े बड़े एक चरणों में नम रहे हैं ॥१०॥

आमद को हक्क सभी का पर दान के ज़िकर पर ।

दादा नहीं न बाचा ये मिस बना रहे हैं ॥११॥

धर्मायतन बनाने पैसा न एक निकले ।

व्यभिचार को तो वेश्या बाज़ार बन रहे हैं ॥१२॥

जिनधर्म सुधा पीने की चाह यहाँ किसको ।

राई के तमाशे में सब रात जग रहे हैं ॥१३॥

पापों से रे 'मनोहर' यहूँ शान्ति मिली किसको ।
पापों से जो बचे वो आनन्द पा रहे हैं ॥१४॥

(५५)

तेरा धन अभिराम जोड़ता क्यों भूठा धन धाम ॥टेका॥
तेरी ज्योति त्रिजग व्यापक है, लोका लोक सकल ज्ञायक है ।
तेरा घर शिवधाम, जगत में क्यों होता बदनाम ॥१॥
समता सुधा सुरस का स्वादी, बनत स्वरूप विसार विषादी ।
तेरा सुख अविराम, ढूढ़ता क्यों जग में विश्राम ॥२॥
तू कृतकृत्य त्रिजग से न्यारा, यह सासा संसार असारा ।
तू महान निष्काम, करे क्यों जग में भूठा काम ॥३॥
दुर्लभ यह तन कुल जिनवानी, चिन्तामणि ज्यों उदधि समानी ।
तू है सम सुख धाम 'मनोहर' क्यों होता दुख धाम ॥४॥

(५६)

शिव साधन के कारण कब बन में ढोल्दं रे ॥टेका॥
जान लिया यह भोग विषय सब केवल दुख दातार ।
छोड़ गये जो भोग हुए वो शिव रमणी भरतार ॥
कब सोहं कब सोहं का अनुभव धोल्दं रे ॥१॥
धागा तक नहिं साथ चलेगा, हंस अकेला जाय ।
या दुनियां में कोई न मेरा फिर क्यों रहुँ लुभाय ।
कब समता रानी से अपना नाता जोड़ूँ रे ॥२॥

मतलब के सुत बान्धव नारी मतलब का संसार ।

तेरे मतलब का नहिं तन धन सब विपदा भंडार ।

कब ममता डायन से अपना नाता तोड़ूं रे ॥३॥

एंच परम गुरु ही अविनाशी सुख निमित्त करतार ।

औरों का संग बना 'मनोहर' अब तक दुख दातार ।

कब शान्ति सलिल से अपने पातक धोलूं रे ॥४॥

(५७)

अब हम काहू विध न मरेंगे ॥टेका॥

जान लिया कर्मों का थल अब इनसे दूर रहेंगे ।

समकित मेरा सांचा साथी इसका साथ करेंगे ॥१॥

अथिर अपावन तन के खातिर नहिं निज बात करेंगे ।

बसु गुण भूषण भूषित चित का ही नित ध्यान धरेंगे ॥२॥

थल थल चसत यहां त्यों यह तन तज अन देह बसेंगे ।

तो भी हान हमारी क्या गर आत्म रूप सुभरेंगे ॥३॥

मोह सैन्य को शील शस्त्र से निरचय सो जीतेंगे ।

आत्म रूप का मधुर 'मनोहर' अनुभव अमृत पियेंगे ॥४॥

(५८)

ऐसे मुनिराज बसो मोरे मन में । जिनके राग न द्वेष स्वतन में ॥टेका॥

धन कण कंचन लाभ विषय सुख बंदन गृह जीवन में ।

रंच न राग करे मुनि जैसे गेही जीरण तृण में ॥१॥

निन्दन बथ बन्धन अलाभ भय रोग वियोग मरण में ।

रंच विषाद नहीं जिन मुनि के वसत मसान गुफन में ॥२॥

भूख प्यास सर्दी आदिक जो होय उपद्रव तन में ।

ब्रह्म विलासानन्द मगन है रंच न खेद हो मन में ॥३॥

करुणा सिन्धु दीन जन बन्धु तारण तरण भुवन में ।

जयवन्तो जिय जासु कृपा कर निवसत मुक्ति सदन में ॥४॥

मार मदन मद मर्दन मुनिवर जीतत विधि रिपु छिन में ।

आओ विराजो शीघ्र 'मनोहर' के नैननि पन्थन में ॥५॥

(५६)

किस तरह तुमको रिखाऊं हे प्रभो महावीर जी ।

तुम विरागी मैं सराग अधीर हूँ तुम बोर जी ॥टेक॥

द्रव्य से नैवेद्य से होते प्रसन्न न तुम कभी ।

दीप माला मोदकों से नेह नहिं लाते कभी ॥१॥

गृह कुटी मंदिर सजाऊं तो न तुम आते कहीं ।

आपके गुण नाद क ये शब्द खिर जाते यहीं ॥२॥

आपके निर्वाण उत्सव में सजाऊं देह को ।

क्या विदेह प्रसन्न होते देख कर मल गेह को ॥३॥

क्या करूं मैं क्या चढ़ाऊं नाथ कैसे खुश करूं ।

देव तुमसे पीर हरने की सुहठ कैसे करूं ॥४॥

मक्ति उत्सव के बहाने पोष लूँ क्या इन्द्रियां ।

एक तेरी भक्ति बिन क्या सोहती हैं विन्दियां ॥५॥
भावना से पोत कर वैराग्य मंदिर शुद्ध कर ।

ज्ञान का दीपक सजाऊं सत्य अद्वा तैल भर ॥६॥
ज्योति अनुभव की जगाऊं मोह तम का नाश हो ।

साम्य सिंहासन सजाऊं अतुल ऋद्धि विकास हो ॥७॥
आपको तहं चैत्य मूरति को बिठाऊं भाव से ।

देख कर अनुपम कृपा भर जाऊं शुद्ध स्वभाव से ॥८॥
आपका वह शुद्ध ब्रह्म स्वरूप यदि परसन्न है ।

तो 'मनोहर' की निराकुलता अधिक आसन्न है ॥९॥

(६०)

हे विश्व बन्धु शांति सिन्धु, सुख निधान जी करुणा निधान जी ।
अब मेरे कर्म क्लेश हरो गुण निधान जी, सब के महान जी ॥टेक॥

माना कि मैंने मोह धार पाप बहु किये, जिय धात अति किये,
परिताप भी किये, परिहास भी किये ।
पर आप तरण तारण भव वास हर हुए, कल्याण कर हुए ॥१॥

मुनि मानतुंग जी को नृपति ने था सताया, द्वेषी का सिखाया,
जेलों में बिठाया, तालों को लगाया ।
बृषभेश भक्ति ने सभी तालों को तुड़ाया, फाटक भी गिराया ॥२॥
श्री वादि मुनि का हास द्वेषियों ने था किया, कोढ़ी बयां किया,
नृप देखने गया, अतिशय वहां भया ।

हिम के समान कान्तिमान देह हो गया, नृप जैन रुचि हुवा ॥३॥
 नृप सेठ सुदर्शन जी को बिन दोष सताया, रानी का सिखाया,
 भट हुक्म सुनाया, शूली पै चढ़ाया ।
 तब आपके ही ध्यान ने शूली से बचाया, आसन पै बिठाया ॥४॥
 कविराज धनंजय हुए जिन भक्ति में मगन, नारी के सुन बचन,
 अहि ने डसा नदन, छोड़ा न प्रभु भजन ।
 स्तुति प्रभाव पुत्र का निर्विष हुवा सुतन, धनि धन्य भक्ति धन ॥५॥
 सोमा ने ध्याय तुम्हें हाथ कुम्भ में डाला, जहं नाग था काला,
 जिहि ज़हर विसाला, विकराल कराला ।
 तब आपकी कृपा ने तहं संकट टाला, की फूल की माला ॥६॥
 जन भ्रम श्रिये मिटालो अगनि कुंड में गिरकर, आदेश ये सुन कर,
 प्रविशी तुम्हें सुमर, तब शील शक्ति कर ।
 तहं स्वच्छ सलिल पूर्ण हुवा कुंड सरोवर, अरविन्द मनोहर ॥७॥
 सासू ने अंजना को भूठ दोष लगाया, निज घर से भगाया,
 बनवास सहाया, तब आपको ध्याया ।
 जिन रत्न विम्ब दर्श हुए देव सहाया, दुख एक न आया ॥८॥
 कौरव ने सभा में सती द्रोपदि को सताया, तन चीर खिचाया,
 तब आपको ध्याया, हुए आप सहाया ।
 तहं शील की महिमा ने गज्जब चीर बढ़ाया, संकट से बचाया ॥९॥
 गुण गाये इन्द्र आपके जु अपनी उमर भर, पाये न पार पर,
 हम सारिखे किंकर, क्या जाने भक्ति कर ।

फिर भी तिहारे नाम सुमरने से प्रीति कर, पाते हैं शान्ति वर ॥१०॥
हे नाथ चाहिये न मुझे लोक संपदा, वह तो है आपदा,
संसार तापदा, दुख खान पापदा ।

चाहूँ कृपाल हो सदैव मात शारदा, कल्याण मार्गदा ॥११॥
जिन भोग सुखों के लिये हैरान सब हुए, शैतान बन गये,

अन्याय बहु किये, वीरान तक हुए ।

वे भोग कुछ समय को भि महमान न हुए, फिर चाहूँ किस लिये ॥१२॥
जिनको सुखी करने के लिये पातकी हुए, उन्मत्त से हुए,

संताप अति किये, परिलाप भी किये ।

वे मेरे घोर नर्क दुख में सांझन हुए, फिर चाहूँ किस लिये ॥१३॥
जिस संपदा के लाभ को दुख धाम बहु हुए, बदनाम भी हुए,

बेकाम भी हुए, अविराम मन हुए ।

इक दो छदाम तक भी मेरे साथ न हुए, फिर चाहूँ किस लिये ॥१४॥
दुख सिन्धु से अनेक जीव आपने तारे, निज भक्ति सहारे,

दुख द्वन्द्व निवारे, संकट से उबारे ।

टुक दृष्टि 'मनोहर' पै करो मुक्ति के प्यारे, संसार से न्यारे ॥१५॥

(६१)

द्विन में भागी भूल बनेगी, जो मति ख्याति और उलझेगी ॥टेका॥
दुर्धर तप ब्रत संयम बल से जो विशुद्धता आन बनेगी ।
कीर्ति चाह से भाव शुभाशुभ कर्म रूप परिणेगी ॥१॥

इन्द्रिय विजय परिपह जय सब आकुलता की खान बनेगी ।
 निज अनुभूति पियुष कटोरी, गिर कर टूक टूक होवेगी ॥२॥
 ज्यों चारों गति उलझत आये, तैसी उलझन होत रहेगी ।
 भूख प्यास गर्मी सर्दी इत्यादि वेदना नहिं बिनशेगी ॥३॥
 क्षेत्र असंख्य अनन्ते प्राणी कहं कहं लो कीरति प्रगटेगी ।
 कीर्ति अधिरदुख सुचिर 'मनोहर' चेतों तो सुख शांति मिलेगी ॥४॥

(६२)

चेतन प्यारा, रूप तुम्हारा, खोवत क्यों अम मान,
 हो अज्ञान, चेतो चेतो चेतन ।
 निज निधि जारी, हुए भिखारी, दर दर अमत अज्ञान,
 हो वीरान, चेतो चेतो चेतन ॥टेक॥

जैसा भोगां में रमा भूल के दुख को इक दिल ।
 वैसा अपने में रमें भल के पर को इक दिल ॥
 शान्ति के श्रोत से संतोष का सागर होता ।
 भूठ माया के नज़ारों को न लख सुन रोता ॥
 गर मोह मध के नशे में ज्ञान न खोता ।
 तो साम्य सुधा स्वाद अमर हो लिया होता ॥
 तून हुआ स्वाधीन पराई आशहिं बन दीवान,
 हो दुख खान, चेतो चेतो चेतन ॥१॥
 चाह पर की रहे सब दोषों का सिर ताज यही ।

यासों खुद ही पै तथा विश्व पै साम्राज्य नहीं ॥
 वह जाय जो उदारता प्रवाह हर बहर ।
 तो शानि दया तोष क्षमा पाँय अपना घर ।
 छोड़ 'मनोहर' आश विरानी, जिनपति का कर ध्यान,
 हो कल्याण, चेतो चेतो चेतन ॥२॥

(६३)

चेतन तजहु विषय असार ।

लाभ क्षा नाश में दुख का सदा करतार ॥टेका॥
 कष्ट सहि सहि निश दिवस भारी वहै श्रम भार ।
 सुकृत जसि अनुकूल पावत विषय साधन रार ॥१॥

अनल जल नृप चोर बान्धव और बहुते यार ।
 वार इनका बच भी जाये भाग्य का दुसवार ॥२॥
 विषय साधन नाश के दुख का न कोई शुमार ।

प्राण खोवत मूढ रोवत धैर्य हो न लगार ॥३॥
 हे 'मनोहर' मान तज इन विषय विष में प्यार ।
 तू न छोड़े तो तुझे ये छोड़ देंगे भार ॥४॥

(६४)

सुनो अर्ज भगवन् मैं क्या चाहता हूँ ।

रहूँ दास तेरा यही चाहता हूँ ॥टेका॥
 तेरे दास रहने में जो सुख भरा है,

नहीं इन्द्र वैभव में वह सुख जरा है ।
 तो क्यों रत तज कांच का खंड चाहूँ,
 तुम्हें चाहिये था वही नाथ चाहूँ ॥१॥

नहीं स्वर्ग की रंच भी कामना है,
 विषय दाह ही की तो वो नामना है ।
 प्रिया संपदा भोग के सुख चहूँ ना,
 सभी नर्क जाने का सीधा नमूना ॥२॥

रमूँ आप में आप पर में रमूँ ना,
 कभी भाव पर ताड़ना के करूँ ना ।
 सदा ध्यान तेरा रहे मेरे स्वामी,
 विभव देख कर भी बनूँ मैं न कामी ॥३॥

बँधै पुण्य सुखदाय नहिं कामना है,
 लखूँ रूप तेरा यही भावना है ।
 बनो पूज्य मुझको पुजारी बनाओ,
 'मनोहर' को जग जाल में मत रुलावो ॥४॥

(६५)

किसके अर्थ बनूँ मैं दीन ।

आत्म तत्त्व तज अन्य जगत के अर्थ सार से हीन । टेका।
 प्रगट भिन्न जन बन्धु मान कर हाय रहौ मैं लीन ।
 बुद्धि विवेक सभी खो वैष्णवी पल लोभी जिम मीन ॥१॥

भोगे दुख सुख विविध सुन्दर पर मानत अजहु नवीन ।

तृप्ति भोग से हो नहिं पाई हुई न आशा छीन ॥२॥
तात मात सुर नार संपदा भोग विषय क्षण क्षीण ।

अशरण अशुभ आपदामय में रम कर होऊँ न शीन ॥३॥
अब चैतन्य सनातन कुल को भज कर होऊँ कुलीन ।

आत्म ज्योति निधि पाय 'मनोहर' होऊँ अहीन अदीन ॥४॥

(६६)

जानूं प्रभू तुम्हें जभी भव पार लगादे ।

मानूं दयाल जब तुम्हें जग जाल मिटादे ॥टेका॥
तुम निर्विकार भक्ति से प्रसन्न न होते,

निन्दा मि करे कोई तो न क्रुद्ध भी होते ।
फिर भी तुम्हारे ध्यान से जन पार हो जाते,

तेरी दया से साम्य सुधा स्वाद पा जाते ॥१॥
आये न देव लोक से थे आप यहां पर,

तो भी हुआ था देश सर्व सम्पदा का घर ।
जब ध्यान द्वार से हृदय मंदिर में बुलाते,

मम सम्पदा दिलाने में क्यों देर लगाते ॥२॥
तुव बिम्ब संग से अजीव शक्ति पा जाते,

सो मानथंभ मानि मान चूर कर जाते ।
जब मन सरोज में प्रभू भक्ति से बिठाते,

निज शक्ति 'मनोहर' को नाथ क्यों न दिलाते ॥३॥

(६७)

चेतन को चेतन ही चिह्न ।

अन्य अशेष अन्य भावों से परिणति जाकी भिन्न ॥टेका॥
राग द्वेष कल्मण से कलुषित जो है अध्यवसान ।
कनक कालिमा सम चेतन को जुदा गिने विद्वान ।

द्रव्यतः मैं हूँ विशद अखिन्न ॥१॥

प्रति प्रदेश मिश्रित जो अब तक बना कर्म सन्तान ।

भिन्न लखावे विशद ज्ञान अरु बतलावे अनुमान ।

वह है जड़ मैं हूँ निर्विणण ॥२॥

राग द्वेष विधि देह जहं चेतन सो हों न अभिन्न ।

परिजन धन तो प्रगट जुदे हैं हों न तनिक आसन्न ।

उन बिन क्यों मानूँ आपन् ॥३॥

ज्ञायक भाव वसाय विभाव न रूप वही अमलान ।

वह सर्वज्ञ सर्वदक्षी प्रभु अनुपम सौख्य निधान ।

उसी में रहो 'मनोहर' लीन ॥४॥

(६८)

हे विरागता माता आवो । आकुलता का ताप मिटावो ॥टेका॥

क्लेश गर्त मय मोह भूमि पै बिलखूँ मुझको शीघ्र उठावो ।

तत्त्व रमण संतोष श्रवण सम्यक्त्व सदन निज अंक बिठावो ॥१॥

सत्य मोदमय हास्य दिखा कर सतत सहज आनन्द जगावो ।
उस ही पद में अभर रहुं ज्यों समता अमृत पान करावो ॥२॥
साक्षर तदपि मूक बानी सुनि भाव जानि निज विरद दिखावो ।
बाल 'मनोहर' पे करुणा कर शरण राख भव पीर मिटावो ॥३॥

(६६)

कषायों और भोगों से बहुत ही हो गया हैरान ।

चिनक चिन वे प्रगट हो हो बनाते हैं मुझे बीरान ॥टेका॥
भोग अभिलाष चिन्ता की विकलता का ठिकाना क्या ।

आत्म हित सोचते भी तो उखड़ पड़ता कभी अभिमान ॥१॥
ख्याति की चाह में माया पुजारी बनना पड़ता है ।

न मन में धीरता इतनी गुणी का सुन सकूँ सन्मान ॥२॥
मान रक्षा में भूठा हठ सरासर करना पड़ता है ।

भले ही लोक न मावे न हठ का हो कभी अवसान ॥३॥
वतन तन धन सदन परिजन व कुल की चाह भी छोड़ी ।

न छूटी मान अभिलाषा न हो सकता कभी कल्याण ॥४॥
प्रशंसा कीर्ति भी तो एक धोखा बाज चक्कर है ।

'मनोहर' काम आत्म राम से रक्खो तो हो उत्थान ॥५॥

(७०)

भगवन आन बसो मोरे मन में ॥टेका॥

चहुं गति भटका, रति विष गटका, आकुलता का मिटान खटका ।

मम कारज तुम ही सो अटका, विनति करूँ चरणनि में ॥१॥
जिन छिन ध्याये शिव पहुंचाये बिन कारण ही हित उपजाये ।

आज हमारी बारी स्वामी राखो नाथ शरण में ॥२॥
आन कुवेषी रागी द्वेषी वे खुद इब रहे भवससी ।

तुम अविकार जगत से न्यारे तुम नामी त्रिपुरन में ॥३॥
आज 'मनोहर' का भव दुख हर अन्तर्यामी अब करुणा कर ।

पल पल छिन छिन निश दिन स्वामी बसत रहो मो मन में ॥४॥

(७१)

भगवान दास तेरा बेचैन हो रहा है ।

कुछ धीर तो बंधा जा बेहोश हो रहा है । टेका।
मुझको अजान लख कर दें दुःख कर्म मिलकर ।

मम ज्ञान धन छुड़ा कर निर्धन बना रहा है ॥१॥
सुत नार गेह उपवन ऐश्वर्य स्वादु भोजन ।

टुकड़े बता बता ये मुझको तंगा रहा है ॥२॥
विधि जाति का न कुल का पहिचान भी निराली ।

फिर भी अनादि से ये पीछे ही पड़ रहा है ॥३॥
छिन शान्ति छवि दिखावो, मिथ्यान्ध को हटावो ।

क्यों तेरी शरण पाये वीरान हो रहा है ॥४॥
वैभव अनेक पाया फिर भी 'न टुक अधाया ॥

वैभव के प्यार ते ही बेकाम हो रहा है ॥५॥

भव भव तिहारी भक्ति पाता रहे 'मनोहर' ।

जिस भक्ति विना भव जल में गोते खा रहा है ॥६॥

(७२)

सुमतिः— चेतो जी चेतो चेतन हो जग में न डोलो ।

मोही चेतनः-देखो जी देखो सुमते हो जग सुख अनमोलो ॥टेक॥

सुमतिः— काह कूँ प्यारे भ्रम मानत है, कुमति से ग्रीति
करी काहे ।

तुष्ट हुआ नहिं तू अनादि से अब क्या तुष्ट हुआ चाहे ।

ईंधन से अग्नी को संतोष होवे तो बोलो ॥चेतो०॥१॥

मोही चेतनः-दादा बाबा पुत्र कहत हैं प्यारी नार कहत प्यारे ।

दुनियां कहती भोगी सुखिया पंडित दानी धनवारे ।

विषयों का सुख तो है सबसे भारी अनमोलो
॥देखो०॥२॥

सुमतिः— नारी सुत संपति के कारण पाप कमा दुर्गति जावे ।

दुनियां मतलब ही के खातिर तेरा भूठा यश गावे ।

अपनी ही ज्ञान तराजू से सुख दुख तोलो
॥चेतो०॥३॥

मोही चेतनः-हा! जिस फन्दे में दुख पाया उस ही के फिर गुण गाऊं ।

क्यों न 'मनोहर' सुमती सोरचि नित्य अभय पद प्रगटाऊं ।

जावो जी जावो कुमते, ओ हमसे न बोलो ।

मोही उन्मत्त जीवों के ही सिर पर डोलो ॥४॥

(७३)

भैया काल तेरे भाल ।

दीन भूपति मृढ पंडित तकत वृद्ध न बाल ॥टेका॥
देव नारक भोग भूमेज चरमदेही टार ।

और जीवों की न आयु की प्रतीति लगार ॥१॥
आयु निर्जर के बहाने व्याधि आदि हज़ार ।

मृत्यु बाद न कर्म छूटै छूट जै घर बार ॥२॥
धर्म के कर्त्तव्य कल को छोड़ ना मत लाल ।

वश न चल है जब अचानक आय सिर पर काल ॥३॥
भोग की अभिलाष ही तो विष भरें हैं प्याल ।

स्वाद ले समता सुधा तो काल का नहिं जाल ॥४॥
सुख स्वभावी खुद 'मनोहर' क्यों करै पर प्यार ।

छोड़ पर रति निज न रम हो तो कुगति हर बार ॥५॥

(७)

४

न अच्छा कभी दिल सताना किसी का ।

दया बिन विफल पाना इस जिन्दगी का ॥टेका॥
सभी प्राण धारी के सुख दुख बराबर ।

न अपने से कम दर्द समझो किसी का ॥१॥

हमें दर्द हो जाता कांटा चुभे गर ।

इसी भाँति समझो सदा दुःख सभी का ॥२॥
तन मन बचन को कटुक मत बनावो ।

दया बिन सदा दुःख चारों गती का ॥३॥
हुआ सो हुआ अब भी संभलो 'मनोहर' ।

दुखावो नहीं दिल कभी भी किसी का ॥४॥

(७५)

कहा सब ग्रन्थ शासन में दया ही सार धर्मों का ।

दया ही तप दया ही ब्रत दया ही जाप भगवत का ॥टेका॥
दया श्री राम ने ब्राह्मण कपिल पर की विपत्ति में ।

रचा देवों ने बन में रामपुर तब रत्नमणियों का ॥१॥
दया श्री नेमि ने की बद्ध पशुओं पे तजा तहं व्याह ।

बने शिव कामिनि के दूलहा संभाला राज्य मुक्ति का ॥२॥
दया महावीर ने की मूक पशु को बलि से बचवा कर ।

सदा जयकार होता है श्री महावीर शासन का ॥३॥
'मनोहर' सोच कर के प्राण सब जीवों के अपने से ।

लगा कर तन व धन अपना मिटावो क्लेश जीवों का ॥४॥

(७६)

ब्रह्म में इस ब्रह्म द्वारा पूर्ण रुचि सज्जान हो ।
ब्रह्म में लय ब्रह्म हो तो ब्रह्म का कल्याण हो ॥टेका॥

भोग में जिस लीनता से रम रहा बहिरात्मा ।

ब्रह्म में वैसा रमें हो जाय तब परमात्मा ॥१॥
भोग तृष्णागार इनमें शान्ति गर होनी कहीं ।

आज तक तो भोग डाले शान्ति क्यों पाई नहीं ॥२॥
मल जनित मल भार मलस्त्रावन अधिर इस देह में ।

श्रीति करने में न हित है द्वित अचल के नेह में ॥३॥
यत्कुछ हो जाय कुछ होनी में कर्म प्रधान है ।

आश की फिर भीख ही में क्या रखा सन्मान है ॥४॥
मृत्यु भय में मुक्ति नहिं सुख चाह में कल्याण है ।

चाह भय दोनों न हो तो आत्म सुख आसान है ॥५॥
भोग भव भव भोग डाले जूँठ में क्या सार है ।

ब्रह्मचारी ही 'मनोहर' शान्ति का आधार है ॥६॥

(७७)

सुख तुझ ही में भरपूर, खोजते क्यों और में ॥टेका॥
जो समरस नहिं सरसावे, मन के न विकल्प मिटावे ।
मदरावे भरमावे, वो ही जन अकुलावे ।

क्यों रचे पर पद में प्यारे, वे जगत के हैं तमाशे, तमाशे ॥१॥
बन जावो ब्रह्म विलासी, पहिचानो निज सुख राशी ।

स्वविकाशी, अविनाशी, क्यों बनते अभिलाषी ।
कामना ही कलेश कारी, हैं अकामी, सुख स्वभावी, स्वभावी ॥२॥

जो भर्मी हो सो जाने, कैसे मूरख पहिचाने ।
भोगाने दीवाने, पर परिणति लिपटाने ।

आश के जो नहिं भिखारी, क्या कर्मी होते दुखारी, दुखारी ॥३॥
तू ज्ञायक शुद्ध स्वभावो, दुखिया जब होय विभावी ।
मायावी, परभावी, पर पद का अनुरागी ।

आत्म पद में जो रमोगे, तो 'मनोहर' सुख लहोगे, लहोगे ॥४॥

(७८)

निज परिणाम से संसार । शुद्धि हित शुभ भाव करि अशुभोपयोग
निवार ॥टेका॥

बसत जग में जिन सयोगी तदपि नहिं संसार ।

अभ्रत शिव सूक्ष्म निगंदी हों न छिन अविकार ॥१॥
भोग लालस अनुपभोगी कर्म बन्ध अगार ।

मुक्ति मानस भोगता भी करत निर्जर सार ॥२॥
रुद्याति मानस साधु आलोचक भरत विधि भार ।

लखि विभाव सुदृष्टि अविरत नहिं छुबे भव वार ॥३॥
ब्रह्म अनुभव बिन अवाक्षित धोर तपहु न सार ।

ब्रह्म आनंद मगन के प्रति समय सुख संचार ॥४॥
रुद्यात निज को रूप जैसो निर्विकल्प उदार ।

परिणमों तैसे 'मनोहर' तो न कलेश लगार ॥५॥

(७६)

जिय के अहित विषय कषाय, खेद मूल विषाद दायक कर्म बंध
उपाय ॥टेका॥

तनिक से सविपाक निर्जर में तनिक सुख भाय ।

बन विभावी कई गुणित फिर कर्म पिंड बंधाय ॥१॥
अनल ईंधन से नदों से सिन्धु क्या विरमाय ।

ज्यों विषय साधन मिलें त्यों चाः दाह बढ़ाय ॥२॥

अहि डसे असि हते जिय विष भखे तन तज जाय ।

विषय विष पीवत सुचिर तक ज्ञान प्राण गमाय ॥३॥
पीजियो समता सुधा रस अतुल सिद्धि उपाय ।

प्रीति पर की तज 'मनोहर' आपको अपनाय ॥४॥

(८०)

करूं क्यों सुख पावन तदबीर ॥टेका॥

नारा सुत का छिन सुख चाहन धारू यत्न गहीर ।

दो दिन के इस जीवन में भी पद पद भारी पीर ॥१॥

यह संसार मुग्ध जीवों के इन्द्रिय सुख की सीर ।

सत्य स्वार्थ का बोध जहाँ नहि असत स्वार्थ की भीर ॥२॥

क्रोध मान माया तृष्णा के पूरण में दिल गीर ।

बने बने में आपा माने बिगड़े पै तकदीर ॥३॥

1

पै विराग की कीरति रागी और विरागी गाय ।

सांची कीरति में मन देहु ॥२॥

दैवाधीन अधिर इन्द्रिय सुख को सुख हित ललचाय ।
आदि मध्य अवसान दुखहि दुख तिनसों का हित पाय ।

चेतन चिन्तन से सुख लेहु ॥३॥

विधि वैरी क्षयि भोग जुटा कर दें तुव निधि विसगय ।
इन टुकड़ों की आश तोड़ सांची निधि ले उपजाय ।

तत्व निधि महिमाएं लख लेहु ॥४॥

अधिक लाभ के हेतु वरिक ज्यों अल्प हानि सह लेत ।
तज भंगुर सुख आश भजो समता जु ज्ञान निधि हेत ।

‘मनोहर’ सांचो लाहु उपेहु ॥५॥

(८३)

रे मन तनिक तू न उदार ।

कपट तेरो प्रगट दीसत कर्म बन्ध अगार ॥टेक॥

तोहि पोषण दुखित होऊं पाय धार अपार ।

तू सुझे आकुल बनाकर चैन दै न लगार ।

धिक् धिक् रे कुतम असार ॥१॥

लखि विराग अगाध सुख भट हो विराग विचार ।

रागियों के राग सुन भट राग का संचार ।

थिर नहिं रहत कोई विचार ॥२॥

तोहि पौष्टुं तो बढ़ाकर तृष्णा दे दुख भार ।
 तोहि मारे सुखी होऊं तोष का आधार ।
 मन का तज 'मनोहर' प्यार ॥३॥

(८४)

भैया भूल गये सुख गैल ।

जहं जावन जो पावन चाहत सुमर वाकों पैल ॥टेका॥
 तू चाहत पावन सुख जावन जहं सुख हो भरपूर ।
 पै उल्टे मग जितने चाले उतनाह सुख घर दूर ।

मानों मत कगे अब भेल ॥१॥
 ये गलियां सब विषय महा बन की जिनका नहिं घोर ।
 शान्ति सलिल का नाम नहीं तहं प्यास रहेगी घोर ।

फसा लेगी कुमति विष बेल ॥२॥
 श्रम कंकण भय कंटक वैधें आपद चोर सताय ।
 ये गलियां छिन भुला पाय तब भारी दें उलझाय ।

गिरायें कुगति ठेलम ठेल ॥३॥
 चाहे तू सुख धाम है जिसका राज मार्ग संतोष ।
 माया तृष्णादिक बन गलियां छोड़ सजो निज कोष ।

'मनोहर' फिर करो निज केल ॥४॥

(८५)

हमारे मन भाये श्री जिन चन्द्र, ध्यावत जिन शत इन्द्र ॥टेका॥



जो मूच्छी आरंभ बढाया नकायु का टिकट कटाया ।

तो पहुंचोगे नर्क लोक में होंगे दुख संपात ॥१॥
जो चुगली माया छल छाया, तन मन और बचन कुछ गाया ।

पशु पक्षी तिर्यन्च देह धर घोर सहोगे ताप ॥२॥
जो मूच्छी आरंभ घटै हो, कोमल निज परिणाम करे हो ।

तो पावोगे मनुज देह जहं मिलता धर्म समाज ॥३॥
संयम से अनुराग करोगे, शान्ति भाव यदि धरत रहोगे ।

तो पहुंचोगे ऊर्ध्व लोक जहं होते सुख संघात ॥४॥
चारों गति की ये रस्तायें, चल लो जहं तेरो मन भाये ।

फिर न 'मनोहर' कर्म मात्र का बतलाना उत्पात ॥५॥

(८८)

कर बरात वर रीति । जो हो शिव राधा सो ग्रीति ॥टेका॥

शारद मात सीख मत भूले, पर पद ग्रीति हटादे ।

तू चेतन बन गुण किशोर वर संतन न्योत दिलादे ।

करले भावन वाहन ग्रीति ॥१॥

ज्ञान गैस की प्रचुर ज्योति में, निज सुख साज सजा दे ।

श्रुति सुवाद्य के मुललित रथ से ब्रह्म स्वदेश गुंजा दे ।

गाले सत्य सनातन गीत ॥२॥

शान्ति तोष नाना आभूषण ज्ञान समीप पठादे ।

चिदनुभूति शिव राधा जननी की शुभ दृष्टि जगादे ।

होवो समता सखि के मीत ॥३॥

शिव राधा सु अनन्त ज्ञान गुण फूल माल पहिनाले ।
• सत्य सनातन मंगल पाकर के अपार सुख पाले ।
जग को छंद्र 'मनोहर' जीत ॥४॥

(८६)

ज्ञानी पुण्य ब्रह्म कूँ भैट । भव बाधायें मैट ॥टेका॥
साम्य सुधारस रासन अवसर पायो जिहि उद्योत ।
खोबन पर पद जाय न भव के रोग चिकित्सा हेत ।
• अपने ही घर में अब बैठ ॥१॥

शालि जननै विधि ज्ञानी कृषि कर साधै नहिं तुष भार ।
मिलत धरत धारि उर उदासता सरधै तनिक न सार ।
ऐसी शुद्ध नीति में बैठ ॥२॥

अतर सुगंध रजत चित्रनि में धरत रसिक हित जान ।
पुण्य ब्रह्म त्यों सौंप 'मनोहर' भद्र शरण वर जानि ।
पालो शिव अनन्त सुख भैट ॥३॥

(८०)

चेतन कर्म दोष न लेश ।

तव विभाव प्रधान कारण विधि उदास विशेष ॥टेका॥

वर्ण वाद न देख साल चढाई ये कर देत ।
चीज़ राखत हो न अपनी चोर गाली देत ।

ऐसे पावोगे क्या पेश ॥१॥

निज स्वभाव न रम के जाने कर्म दूषण देत ।

नृत्य विद्या शून्य अंगन टेड़ को मिस लेत ।

ऐसे क्या कटै दुख लेश ॥२॥

तुमहिं कर्ता तुमहिं भोक्ता तुमहिं हो हरतार ।

तत्व तो समझो न क्यों धो ईश कर्महिं भार ।

ऐसे क्या बचै दुख शेष ॥३॥

अब मी चेतो तो न भूलै छोड़ पर सो नेह ।

दिवस भूल्यो शाम के आ जाय जो निज गेह ।

हो क्यों जग 'मनोहर' शेष ॥४॥

(६१)

भैया कहं चले तुम जात ।

राग लोक सुनो तनिक सुख तहं भगे झट जात ॥टेक॥

जा रहे तहं छल बड़ा है, सार का नहिं नाम ।

नाम के परिजन लुभा कर करेंगे बदनाम ।

दुख में दे सकें नहिं हात ॥१॥

जो तुम्हारी निधि न जिसका नेक नाम निशान ।

मानते पर से मिले सुख के विकृत परिणाम ।

जैसे श्वान अस्थि चवात ॥२॥

देख ले निर्दोष मूरति आप ही में आप ।

हो 'मनोहर' सौख्य सागर क्यों सहत आताप ।

तुम तो स्वर्ण सम अवदात ॥३॥

(६२)

अब है और कितनी रात ।

भोर भाँकी तक न देखी दिन कि तो क्या बात ॥टेका॥
रूप निज को भी लखे नहिं घोर है अंधयार ।
आत्म निधि कैसे रखाऊं लखत कर्म गंवार ।

ठाड़े बैं लगाये घात ॥१॥

जो सुमति सो भेट होती तो न भीति लगार ।

कुमति के विधि भाई बन्धु कुमति का संसार ।

घर की फूट में कहं सात ॥२॥

भावना के तेल सों लो तर्क दीप उजार ।

आत्मगृह लखते रहो जब लों न यम का बार ।

हूं है कबहुं ज्ञान प्रभात ॥३॥

उदैं समकित सूर्य आनन्द कमल प्रमुदित होय ।

नष्ट हो मिथ्या निशा त्रैलोक्य परगट होय ।

होगा तब 'मनोहर' सात ॥४॥

(६३)

आज मन तोकूं हित पन्थ बतायें । तत्व से हेत लगायें ॥टेका॥

जग में जे नर नारी तन हैं, ते सब मल के घर हैं ।

काम उदैं भये गोरे तन को मूरख समझत वर हैं ।

मांस पिन्डनि में मन क्यों ललचायें ॥१॥

पुत्र मित्र सब कोरी कल्पना सब जिय मतलब रत हैं ।

प्रवल मोह मिथ्यात्व उदय भये मोही मानत सच हैं ।

भूठ फन्दन में मन क्यों बहलायें ॥२॥

करि निदान कृत पुण्य उदै जो मिलत विषय वैमव हैं ।

करि पर्याय निरत वे वैमव भटकात भव भव हैं ।

आश बन्धन में मन क्यों उलझायें ॥२॥

चेतन रूप तिहारो जैसो जब तक हो न प्रगट है ।

निश्चय जान 'मनोहर' तब तक ये जग जाल अमिट है ।

तत्व चिन्तन में मन क्यों न लगायें ॥४॥

(६४)

लालसा ही क्लेशों की खान । न संग्रह से दुख मिटत सुजान ॥टेका॥

आशा गर्त प्राणि का ऐसा जामें विश्व समाय ।

विश्व विभूति सभी चाहत हैं किस के घर जाय ।

चंचला है सुकृत की आन ॥१॥

जो निधि पाई गर नहीं पाता थी क्या जीवन हान ।

धनिक हुए तो अधिक मिले बिन समझे निज अपमान ।

बढ़ाया आकुलता का मान ॥२॥

सुख मन का विश्राम कहावे नहिं पद्मा परिवार ।

सो सुख तुष्णा शान्त हुए बिन कैसे होय विचार ।

विषय सुख हैं तृष्णा की खान ॥३॥
जिनके रंच न विषय आश है सदा ज्ञान तप ध्यान ।
तिन निर्ग्रन्थ माधुरुण का ही करो 'मनोहर' गान ।
करो समता सागर इस पान ॥४॥

(६५)

फिर न यौवन को बल आय, चाहे कैसा ही रस खाय ॥टेका॥
जब तक बल है धर्म कमाले क्यों मद में बौराय ।
बृद्ध भये तब का वश चल है, फिर मन में पछताय ॥१॥
है न भरोसा इस ही बल का रोग अनेकों खाय ।

समवर्ती यमराज न जाने किस दिन दे धमकाय ॥२॥
बालपना अज्ञानमयी है, बृद्ध अर्ध मृत भाय ।
धर्म सधै इक तरुणाई में मत विषयन भरमाय ॥३॥
गिरि सो गिरत सरित सम यौवन को फिर वेग न आय ।

अहित छांड हित पंथ भजो दुनियाँ कैसउ बहकाय ॥४॥
तू विधि कर्ता तू फल भोक्ता कोई नाहिं सहाय ।
बीतराग विज्ञान शरण कूँ सदा 'मनोहर' ध्याय ॥५॥

(६६)

हित की सुन तनिक सी बात ।
मानना नहिं मानना यह तो तिहारे हाथ ॥टेका॥

अहित भंगुर भोग तृष्णा जन्म मरण विषाद ।

सब अहित का मूल है इक मोह जिहि ललचात ॥१॥

मोह तज निर्मोह हो ले यही हित सुन भ्रात ।

लार सुख दुख में न कोई काय मन घहलात ॥२॥

मोह जीते जीत डाले और दोष निपात ।

षा लिये शुचि लोक उत्तम सर्वशुण संघात ॥३॥

साधु के ब्रत कठिन सुनकर काय मन घबड़ात ।

मोह के जीते सकल ब्रत भट सहज हो जात ॥४॥

पन्थ हित जानू नहीं यह सोच क्यों सङ्कुचात ।

मोह को जीते 'मनोहर' खुद समझ आ जात ॥५॥

(६७)

कल्यना है ये कोरी, न है सुख विषयन ओरी ॥१२८॥

शुष्क अस्थि जिम श्वान भखत निज रुधिर खोय सुख जोरी ।

अशुचि देह रमि वीर्य खोय त् सुख मानत वर जोरी ।

बांड दे बात भोरी ॥१॥

भव भव परिजन हुए जीव सब सभी मित्र अरु धोरी ।

भोग सधैया यार बतावे रिप माने जो छोरी ।

क्या यहां मोरी तोरी ॥२॥

सारी उमर मोह में खोई आयु रह गई थोरी ।

करले ऐसो यत 'मनोहर' ज्यों विलसो शिव गौरी ।

जन्म की तोड़ डोरी ॥३॥

(६८)

भैया सब जगत को फन्द ।

हित विराग अखंड अनुपम शुद्ध ब्रह्मानन्द ॥टेका॥

मेरा तेरा मानने से ही बढ़ाई रार ।

मृत्यु बाद समाज में से क्या गया कुछ लार ।

करते क्यों कथाय अमंद ॥१॥

नार सुत बान्धव जनों को इष्ट मान लुभाय ।

वेंविषय विषफल चखाकर भाव प्राण गमाय ।

दुष्ट दुष्टावत भव सिन्ध ॥२॥

आत्म बंधन के लिये है संपदा का जाल ।

सुलभना भारी कठिन है उलझना तत्काल ।

विषयैषी न हो निर्द्वन्द्व ॥३॥

जीव पुद्गल की विभावी देख कर पर्याय ।

क्यों अरत रत हो 'मनोहर'निज स्वभाव भुलाय ।

तुम तो सहज ही सुख कंद ॥३॥

(६९)

प्रभु तरो जी प्रभु तरो ।

अब अपनो विरद निहार नाथ मोहि भव सागर से तारो ॥टेका॥

तुम हो मेरे मैं हूँ तिहारो, पूरो मोक्षं तेरो सहारो ।
 दुखिया के औगुण न निहारो जन्म मरण दुख टारो,
 दुख टारो जी……॥१॥

तुम हो तीन भुवन के स्वामी, तेरो सुजम तिहूं जग नामी ।
 मो दुख मेटो अन्तर्यामी, राग द्वेष निरवारो,
 निरवारो जी……॥२॥

तुम विराग विज्ञान मयी हो, मोह सैन्य के तुम विजयी हो ।
 पावन पतित उधारण तुम हो, विषय विपिन से काढो.
 अब तारो जी……॥३॥

(१००)

रे विधि छोड़ दे मम संग ।
 मान ले या छेड़ ले फिर आज मोसुं जंग ॥टेक॥
 अजड़ जड़ से हो सके नहिं का तिहारो मंग ।
 साथ छोड़े भी मिटै नहिं मूर्त्त रूप करंड ।
 मानो मत करो अब तंग ॥१॥
 साम से माने नहीं तो दाम से मन मंड ।
 पाई पाई से संभालो जग विभूति करंड ।
 पर मत होओ यों उद्घन्ड ॥२॥
 का निहारो वश चले जब मैं भजूं चित्पिन्ड ।
 तू हमारो का विगाड़े मैं सदैव अखंड ।

छोड़ो पैल के सब रंग ॥३॥

परम पैनी सुबुधि छैनी से विदारु अंग ।

छिनक में झड़ झड़ भरोगे देऊ ऐसो दंड ।

क्या हो तुम इसी में चंग ॥४॥

धार ले अब हे 'मनोहर' धर्म चक्र प्रचंड ।

तो भटिति कबहुं बनोगे बन असंग अनंग ।

पै ही सुख अनन्त अभंग ॥५॥

(१०१)

क्यों लागे अब तृतीय व्याह की खट पट अट पट सी भारी ।

नेग रिवाज बजार राग के नटखट होंगे क्या जारी ॥टेक॥

सम्बन्धी परिजन समझावत दे मिसाल भारी भारी ।

हो छब्बीस वरष के ही तुम अभी उमर रक्खी सारी ॥१॥

सोचूं ऐसी गुणवाली क्या बनी गृहस्थी अरु नारी ।

काम उदै भये मोही माने अब गुण भाजन गुणवाली ॥२॥

वसा आज तक गृह फंदों में स्वार्थवासना ही धारी ।

निज पद भूल्यौ पर पद भूल्यौ दुख को सुख मानो भारी ॥३॥

परिजन सुख दुख वृद्धि हानि में लाभ हानि की मति धारी ।

हुई संतति, हुइ ऐसी तन छोड़ चले दो जी धारी ॥४॥

धर सुत सो कहुं नाम चलो सुख मिलौ काहु को धी धारी ।

निज रत होय अनन्त सुखी बन ऐ नरभव के व्यापारी ॥५॥

धन्य धन्य ते बड़ भागी जिन भोग रोग इच्छा टारी ।
जाऊ 'मनोहर' शरण उन्हीं के पावन चरणन बलिहारी ॥६॥

(१०२)

मित्र जन सुन लो हित की बान । जचै तो मान लियो बुधवान ॥टेका॥
चेतनता ही जीव कहाये, सो सबके इक रूप लखाये ।
दीन हीन का भेद न करि जो सब पै करुणावान ।
बही वीरों में वीर प्रधान, सताना पर का है आसान ॥१॥
पूरब पुण्य हि संपति पावे, पाप उदै संपत्ति विलावै ।
धन पाकर जो धर्म कमावे, वे ही जन धनवान ।

करे जो कृपण नहीं टुक दान, उन्हों का धन पाषाण समान ॥२॥
विद्या का फल तत्व समझना, तत्व समझ हित कारज करना ।
बड़ भागी हित पन्थ लगैं जो वे ही ज्ञान निधान ।
बने जो पढ़ करके विद्वान, न चेतें तो वे निपट अजान ॥३॥
नर भव सफल जो हित कर जाते, यों तो देह अनेकों पाते ।
तज देते जो भोग 'मनोहर' वे ही पुरुष महान ।
भोग तजना शूरों का काम, भोगना भोग बड़ा आसान ॥४॥

(१०३)

आज पुरवासी करत किलोल, न जाने मो मन काय अडोल ॥टेका॥
कोई बदन विचित्र रंगावे, तकतहिं झट पहिचान न आवे ।
नाच नचावे ताल बजावे, भंड बचन दें बोल ॥१॥

नर नारी मिल यों इठलावे, सोचत कहत लाज आ जावे ।

भीतर बाहर फाग मचावे, मन की बातें खोल ॥२॥

नार वियोगी कई पक्कतावे, पर कैसो सुख कहँ ते पावे ।

पै ये शोक न मो मन आवे, यहँ तो औरहि गोल ॥३॥

पुरावारी सब शोर मचावे, मो मन अर्हन् अर्हन् गावे ।

आज 'मनोहर' के मन अर्हन्, भक्ती को रंग धोल ॥४॥

(१०४)

लोग कहैं घर मिट गयो, मगर मोरो सारो कारज बन गयो ॥टेका॥

उत्तम औषधि मंत्र किये ज्यों, विष अरु दाह मिटे तन के त्यों ।

ज्ञानामृत से भोग चाह मूर्च्छा हट ज्ञान प्रगट भयो ॥१॥

विषय हेत थो श्रम सो थक गयो, इनके हि खातिर जहं तहं शक भयो ।

अब बे फिकर बनो जिनवर सों सांचो नेह प्रगट भयो ॥२॥

परिचय अरु विश्वास बढ़ौं ज्यों, नार नेह आकुलित भयो त्यों ।

नार वियोग सुमित्र बनाकर चोखो भाग उदय भयो ॥३॥

विनशो मोह निमित्त 'मनोहर' तो अब सब सो ममता बज कर ।

निर्विकार निद्वन्द्व विकलमष पंच परम गुरु पद नयो ॥४॥

(१०५)

जीवन दिन चार यार । अपनो हित सार सार ॥टेका॥

थावर विकलत्रयादि, पंचेन्द्रिय भाँति भाँति ।

तिन सब सों निकमि निकसि पाई नर देह सार ॥१॥

वर्ण जाति काय पर्म, श्रावक कुल जैन धर्म ।

सत्संगति शास्त्र श्रवण मिलते नहिं बार बार ॥२॥
काम नींद भय अहार, करते पशु औ गंवार ।

इनही में मरण होय तो न होय क्लेश बार ॥३॥
पर के सुख हेत यार लादत क्यों पाप भार ।

दुख हों जब पाप उदै होगा नाहिं कोई लार ॥४॥
निज को निज जान जान, पर को पर मान मान ।

तो न 'मनोहर' कबहूँ डूबोगे क्लेश बार ॥५॥

(१०६)

आज विषयन को छल लख पायो ॥टेका॥

ज्यों मृग मृगतृष्णा जल मानत कोशन कोशन धायो ।

त्यों मैं अहित विषय हित भ्रम कर तिन ही के गुण गायो ॥१॥

ज्यों कफ माहि मच्छिका उलझत उलझत प्राण गमायो ।

विषय मांहि त्यों उलझ उलझ कर अपनो ज्ञान गमायो ॥२॥

ज्यों गज मीन भ्रमर पंखी मृग तृष्णाहिं प्राण गमायो ।

अब तक मैं वीरान भयो त्यों तिन छल जान न पायो ॥३॥

उपल कमल ऊँगे पश्चिम रवि अनल शीत हो जायो ।

पै न 'मनोहर' इन्द्रिय सुख में नेकहु मंगल गायो ॥४॥

(१०७)

मिटाना कठिन नाम की चाह ।

जो न जाय ये चाह न तब तक मिटै चित्त की दाह ॥टेक॥
धन वैभव जन त्याग सरल सब ब्रत तप संयम दान ।

कठिन, न चाहे लोक प्रतिष्ठा लोकनि को सन्मान ॥१॥
अति मोही जन वंश चलावन सहत धोर संताप ।

हो न खास पर को गोदी ले वर जोरी हों बाप ॥२॥
छोड़ गृहस्थी भये वैरागी तोउ न छूटे आश ।

चाहे, मैं महाराज कहाऊं लोक बनै मो दास ॥३॥
है संसार चाह का फंदा जो मिट जाये चाह ।

तो पा जैहो झटिति 'मनोहर' मोक्ष महल की राह ॥४॥

(१०८)

मुक्ति मिले न मिले हमको प्रभु, चाहूं जो कुछ अर्ज सुनायें ।
द्वेष की ज्वाल से पिंड छुड़ायें, राग में अन्धे न हो पायें ॥टेक॥
ज्ञान अनन्त मिले न मिले प्रभु, केवल निज को जानत जायें ।
दर्श अनन्त मिले न मिले प्रभु, केवल आतम को लखि जायें ॥१॥
सौरभ्य अनन्त मिले न मिले प्रभु, आकुलता का ताप मिटायें ।
शक्ति अनन्त मिले न मिले प्रभु, खुद ही में खुद पैठत जायें ॥२॥
सुर नर पूज मिले न मिले प्रभु, हम हाँ निज को पूजत जायें ।
आदर मान मिले न मिले प्रभु, हम अपना आदर कर जायें ॥३॥
और विभूति मिले न मिले प्रभु, उनमें 'मनोहर' का हित पायें ।
पर की प्रीति रीति तज समता सार सुधा रस पीवत जायें ॥४॥

(१०६)

वो थी भारी भूल हमारी ॥टेका॥

नारी तन गौशंग निहारयो, मधुर बचन सुन मन हरणायो ।

प्रेम भगति लखि यों मन भायो मैं जग में बड़ भागी ॥१॥
सम्बन्धी कृत आदर लखकर, सोचू यह सब नारी बल कर ।

राग तिमिर में अन्धे होकर सारी सुध विसराई ॥२॥
विरधापन तक साथ जियेंगे, मर कर भी हम साथ रहेंगे ।

ऐसी मिथ्या कर प्रतीति मैं व्यर्थ कियो मद भारी ॥३॥
धर्म कर्म जित तित मन भूले, पै सुदृष्टि निज ध्यान न भूले ।

त्यों उसकी प्रसन्नता के हित, करी विवेध चतुराई ॥४॥
आशा न जीवन में हित पता, चतुरचक्षु गर मिट न जाता ।
मान 'मनोहर' सार बात यह श्री अरहंत सहाई ॥५॥

(११०)

प्रभु मोरे जीवन की नैया भव सागर में अटकी ॥टेका॥

बहु संकल्प विकल्प तरंगे, लेती बढ़ बढ़ भारी उमंगे ।

जिनके बेग में नैया छूबत मोरी नाहिं वश की ॥१॥

फिर तारो तो चाहे बहादो, या फिर वारि पार पहुंचा दो ।

मैं तो जान गयो तुम तारण, तुम्ही सो अब खटकी ॥२॥
सांचो नेह तुमहीं में मेरी हूं तेरे चरणन को चेरो ।

मोकूं आश तुम्हारी भारी, तुम जानत घट घट की ॥३॥

तुम्ही निर्मल गुण के पूरे और कुदेव काम मद भूरे ।
 खुद अपनी नैया भव दधि में झटझट अट पट पटकी ॥४॥
 जो उर ब्रह्मानन्द बसोगे, पार 'मनोहर' को न करोगे ।
 ये मानूं कैसे मोरी तो ढोर तुम्हीं सो लटकी ॥५॥

(१११)

न अपना ज्ञान धन खोता भिखारी क्यों बना होता ।
 खुदी का खुंद पुजारी तू कभी का बन गया होता ॥टेका॥
 अचेतन अन्य चेतन में ये भेरे हैं मैं इनका हूँ ।
 इसी दुर्बुद्धि से तो खा रहा भव सिन्धु में गोता ॥१॥
 बना तू दास जिस तन का खिलाते सुख दिलाते हो ।

दुखी कर मिटने से पहिले दुखों का बीज बो जाता ॥२॥
 तुम्हे है कामना का रोग इसका वैद्य न कोई ।

ये मिट भी जाते जड़ से गर चिकित्सक तू ही बन जाता ॥३॥
 भजो चारित्र की औषधि मिलाकर ज्ञान के रस में ।
 लखो परहेज विषयों का नहीं तो सर्व दुख दाता ॥४॥
 लखो निज आत्म विद्या निधि मिटावो दैन्य ये अपना ।

न सुख दुख कर 'मनोहर' देख कर जीवन में छिन सपना ॥५॥

(११२)

स्ववश परवश में भारी भेद ॥टेका॥

परवश पाय नरक वेदन चाहे न स्ववश कुब्ब खेद ।

जो बड़ भागी स्ववश तपैं तप बनत सदैव अखेद ॥१॥
चोर चुराले रिश्वत देलें गज दंड दे लेत ।

पै न दान दो पाई कर हैं चाहे हो तन छेद ॥२॥
परवश को सुख अथिर आपदामय पापों का हेत ।

स्ववश सहै कहुं रंच वेदना तो हो जाय अखेद ॥३॥
विषदायें जो आये यहले स्वागत ही कर देख ।

स्ववश भजो समता तज ममता मान 'मनोहर' चेत ॥४॥

(११३)

मन काहे भजे अरि नारी, मल मूत्र भरी घिन कारी ।

याही सो बनत दुखारी, काहे न तजे तू यारी ॥टेका॥
जो चिन्तत चित दुखावे, सेवत तन रोग बढ़ावे ।

ईश्वर से नेह छुटावे, आकुलता नित उपजावे ॥१॥
कामिनि के काम सताये, हा बारह वर्ष विताये ।

किन किन के चित दुखाये, प्रभु सो भी द्वेष बढ़ाये ॥२॥
अब नार का नाम न लूँगा, प्रभु का हीं ध्यान धरूँगा ।

न 'मनोहर' छिन विसरूँगा, प्रभु ध्यानहिं ध्यान मरूँगा ॥३॥

(११४)

बड़ा हैरान हूं स्वामी तुम्हें कैसे निहारूँ मैं ।

मैं खुद आऊं या मन भेजूं तुम्हीं को या बुलाऊं मैं ॥टेका।
 मैं खुद आऊं तिहारे दर्श करने को है अभिलाषा ।
 मगर इस देह के विकराल फन्दे में फंसा हूँ मैं ॥१॥
 न रागी हो न द्रेषी हो जगत के फन्द से न्यारे ।
 नहीं जग जाल में आते कहो कैसे बुलाऊं मैं ॥२॥
 मेरा मन मोह ने जकड़ा व तुम हो लोक के शिर पर ।
 न शिवपथ मन ने देखा है कहो कैसे पठाऊं मैं ॥३॥
 सिवा मन के पठाने के न कोई और चारा है ।
 इसी को ही पठा कर जानकर मूरति निहारूँ मैं ॥४॥
 ये मन भावों से जा सक्ता न मन की मृत्ति जा पावे ।
 तुम्हीं भावो से आ जावो तो मन में शक्ति आ जावे ॥५॥
 दया सागर तुम्हारा रूप सुझ ही मैं बसा तो है ।
 तुम्हारा तो विरद सांचा यहां अपराध मेरा है ॥६॥
 अगर रति तोड़ दूं जो चेतना के रूप से पर है ।
 मनोहर पद मनोहर का मनोहर से मनोहर है ॥७॥

(११५)

तीन टिकट; शिवपुर के तीन टिकट ।
 तीन में हीन कछू रह जाये तो शिवनगर अघट ।
 शिवपुर के तीन टिकट ॥टेका।
 सम्यक दर्शन ज्ञान चरण रत्नत्रय तीन कहावे ।
 वीतराग संवेदन ज्ञानी को इक रूप लखावे ।

मुढ़नि को बहुत विकट ॥१॥

शुद्ध चेतना सम रस सागर उपादेय हित भावे ।

ऐसी ढड़ प्रतीति हो जाके सम्यक् दर्श लहावे ।

मिटै जब मोह सुभट ॥२॥

जीवाजीव अर्थ, विघटत थिर रहत यथा परिणावे ।

न्यून अधिक मिथ्यात्व रहित थिर सम्यक् ज्ञान लखावे ।

न हो अज्ञान निकट ॥३॥

ब्रह्म स्वरूप विराग विकल्प चिदानन्द विज्ञानी ।

सम्यक् चारितवन्त रमै त्यों होय निजातम ध्यानी ।

बनै सुख कद प्रगट ॥४॥

जो रहत्रय ध्यावे, सो नर चहुंगति के दुख नाशे ।

पाकर निज गुण कोष 'मनोहर' नित्यानन्द प्रकाशे ।

झरै विधि बैरी झट ॥५॥

(११६)

अविकारी-दुखहारी-सुखकारी तुमही हो ॥टेका॥

अन्तर्यामी ब्रह्मविरामी, वीतकाम, शान्ति धाम, बसते अभिराम धाम ।

अविनाशी, सुखराशी, शिववासी तुमही हो ॥१॥

शिवपथ नेता, विधि बत जेता, अतुल वीर, शर्म सीर, हरते भव वास पीर ।

निर्दोषी, संतोषी, गुणपोषी तुमही हो ॥२॥

आज 'मनोहर' पै करुणा कर, निराधार के आधार, जन्म जरा मरण टार ।

हितकारी, स्वविहारी, विपुरारी तुमही हो ॥३॥

(११७)

भैया जानो धर्म को मर्म ।

निज विभाव को उदय न पर पीड़ा तहँ सांचो धर्म ॥१॥
भेष बनाये काम सरे का भावहिं भाय कुकम् ।

काम क्रोध मद लोभ कपट जहँ रंच तहां नहि धर्म ॥२॥
मल मल न्हाये देह सजायें, शुचि हुइ है का चम् ।

भोग विषय अभिलाष न हो तो तन जि दोनों पर्म ॥३॥
वीतराग विज्ञान ज्ञान हित जो मिट जाये भम् ।

चार कषाय ज्वाल से बचकर पा जैहो शिव शम् ॥४॥
आकुलता की खान मोह रति द्वेष न हो तहँ धम् ।

धम् मर्म बिन धोध 'मनोहर' हूटै कभी न कम् ॥५॥

(११८)

कैसे काटोगे जग जाल ॥१॥

पर पदार्थ की परिणति खातिर निश्च दिन वीतत काल ।

दुख अपमान सहत इस ही सो हूटत तऊ न कुचाल ॥२॥
जग की चाह अजग गति तेरी जग न चाह जगवाल ।

निज की जगन चहो न चहो जग यही हाल दुख टाल ॥३॥

नाम चाह जग आश पाश भड़ी में भौंको लाल ।

पर कुछ काम न आय 'मनोहर' तूही तुझको ढाल ॥४॥

(११६)

जब हम ही खुद के वश नहीं, दुनियां की क्या आशा करुँ ।
 किसके लिये मोही बनूँ, खुद का ही कर्म खुद ही भरुँ ॥टेका॥
 तुम हो मेरे हम हैं तेरे, बंधन में फँसि इस जाल के ।
 जिन सारिखा होकर भी मैं दुनियां की क्या आशा करुँ ॥१॥
 रावण से शूरों ने कभी, जिसके लिये भगड़े किये ।
 तुण तक न साथ उनके गया, दुनियां की क्या आशा करुँ ॥२॥
 मैं एक हूँ असहाय हूँ, आज्ञाद हूँ निर्लेप हूँ ।
 सुख शान्ति से भरपूर हूँ, दुनियां की क्या आशा करुँ ॥३॥

(१२०)

सुख हम ही में था नहीं जानो ।
 थन जन में सुख की आशा कर नित आहुतता ठानी ॥टेका॥
 चिन्तामणि सिर बांध काष्ठ का भार वहै नित जिम अज्ञानी ।
 नाभि गन्ध के बोध बिना मृग की गति जिम बन में भरभानी ॥१॥
 आंखन बांधी चरमा पाठी सारो वस्तु विरंग दिखानी ।
 सद्गुरु सत्य स्वरूप बतावे भ्रम वश ताकी एक न मानी ॥२॥
 मिथ्यादर्शन ज्ञान चरण से पर परिणति में मति लिपटानी ।
 मिथ्यादर्शन ज्ञान चरण विन निज मति सुख को सीर बखानी ॥३॥
 हूँ स्वतन्त्र आनंद ज्ञान वन मुझ से पर की दशा विरानी ।
 पाऊँ अविचल शर्णात 'मनोहर' अब समता की जड़ पहचानी ॥४॥

(१२१)

मैं कब ऐसो भाव उपाऊँ ।

इष्ट अनिष्ट विषय निरखत भी नेह अनेह न लाऊँ ॥टेका॥

रभ्म थम्म सम दम्म जगत के हा फिर क्यों ललचाऊँ ।

भव पथ के सब पथिक यहां पर किन सो रार बढ़ाऊँ ॥१॥

सुख चाहूँ तो क्यों दुख कारण में मन अब बहलाऊँ ।

दुख से भीत रहूँ तो क्यों जग छल सुख माहिं लुभाऊँ ॥२॥

गुणियों के गुण गान श्रवण कर नित अनुराग बढ़ाऊँ ।

पर के दोष श्रवण कथनी में बधिर मूक कहलाऊँ ॥३॥

विचल जगत काया में बसकर भी अविचल हो जाऊँ ।

जीव अजीव, अजीव जीव नहिं हो क्यों फिर भय भाऊँ ॥४॥

चाह बढ़ाऊँ तो निश्चय सो पीड़ा में बध जाऊँ ।

चाह दाह का नाश करूँ तो मोक्ष 'मनोहर' पाऊँ ॥५॥

(१२२)

इतनी निगाह रखना जब प्राण तन से निकले ।

सम भाव सुधा पीना जब प्राण तन से निकले ॥टेका॥

सुत नार तात परिजन संसार के मुसाफिर ।

इनमें न मोह लाना जब प्राण तन से निकले ॥१॥

धन संपदा है माया चक्री भी यासों हारे ।

तिनका समान तजना जब प्राण तन से निकले ॥२॥

विषफल समान सुन्दर दुख पाक भोग जग के ।

इनमें न प्यार करना जब प्राण तन से निकले ॥३॥
क्या भोग भोग डाले भोगों से खुद भुगे हम ।

उनका न ख्याल रखना जब प्राण तन से निकले ॥४॥
चैतन्य चिन्ह चेतन चिन्तन से चेत जाना ।

उरना न छिन 'मनोहर' जब प्राण तन से निकले ॥५॥

१२३

देश के वासियों, देह के साथियों, मोह था जब तलक भेद जाना नहीं ।
हम जुदे तुम जुदे कर्म फल भोगते साथ जावे न कोई साथ आया नहीं ।
॥टेका॥

हम तुम्हारे हैं तुम हो हमारे सुखद, वस इसी मोह में खुद को जाना नहीं ।
दुःखदाई यही मोह दुश्मन बड़ा, मोह मुझमें न लाना दिलाना नहीं ॥१॥
भोग तृष्णा से शान्ति न होती कभी, चाह की दाह ही हो यही जानकर ।
जा रहा हूं शरण श्री गुरु के चरण, शांति पाऊंगा आरहन्त का ध्यान
धर ॥२॥

मैं रहूंगा नहीं देश कुछ वर्ष तक, मोह बाधा न हो फिर यही ख्याल कर ॥
जाते जाते कछुक हित की बातें कहूं, चाहो कल्याण तो भूल जाना नहीं ।
॥३॥

मित्र विद्या से धन धर्म सुख लाभ है, देश का जाति का अपना उद्धार है ।
अपने बच्चों को विद्या पढ़ाते रहो, एक विद्या बिना जीवना भार है ॥४॥
बरुवासागर की है पाठशाला निकट, बच्चे भर्ती करो काम लखते रहो ।

पाठशाला है क्या कल्प-तरु आपका, द्रव्य जल सींच हर दम बढ़ाते रहो
॥५॥

मित्र आपस में सच्चा करो संगठन, पूट सी दूसरी कोई आफत नहीं।
चन्दु निर्धन व असहाय हों जाति के, तो गले से लगावो सतावो नहीं
॥६॥

मित्र जावेगा क्या साथ जब हो मरण, जिसपे पोढ़ोगे तृण भी नहीं
जायेगा।

मन्सा बद्मन्सा से पुण्य व पाप हों, उनका फल ही तुम्हारे नज़र
आयेगा ॥७॥

मित्र मिलता न हर दम मनुष का जनय, भोग ही में मरैं कैसे हृटे करम।
देव पूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय तप, दान संयम सदा कर कमालो धरम
॥८॥

पर के दूषण के कहने में मत हर्ष कर, पहिले अपने ही औगुण को
लख लो ज़रा।
ज्ञानियों का समागम जुटाते रहो, उनके वचनों में ही सच्चा सुख
है भरा ॥९॥

कर्म के सब पिरे दोष के हैं भरे, शिक्षा संतत न हो काम कैसे
सरे।

फिर भी शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा श्रद्धान कर ऐसा श्रद्धान कर ॥१०॥
इच्छा कहता रहूँ पर समय न अधिक, अन्त में इस 'मनोहर' की
अर्जी सुनो।

मोह से द्वेष से मुझसे पहुंचा हो दुख, माफ करना मुझे माफ
करना मुझे ॥११॥

(१२४)

“वारह भावना” (ब्रत प्रतिमा लेने के बाद)
दोहा

नम् नम् आनन्द धन हे विराग विज्ञान ।
वम् वम् भव पीर सब करुं सुखामृत पान ॥टेक॥
क्लन्दः-हम सब चाहें जग के जीव, दुःख न हो सुख रहे सदीव ।
सुख के अर्थ भरवौ अम भार, सुख नहिं पायो कबहुं लगार ॥१॥

अनित्य भावना

तन धन पुत्र मित्र परिवार, परिणामि इनकी इनके लार ।
मैं चाहूं मो माफिक रहें, सोचो फिर कैसे सुख लहे ॥२॥

अशरण भावना

तन धन गृह सुत किंकर नार, इनसे सुख जीवन अम धार ।
इनको दास न बन सुन भ्रात, कर्म उदै जीवन सुख सात ॥३॥

संसार भावना

हो न कबहुं दुख वह सुख सार, इन्द्रिय भोग हैं प्रकट असार ।
रंक राव सब तृष्णागार, सो असार सब विधि संसार ॥४॥

एकत्व भावना

बन्धु मित्र जाने सुखकार, तेरो सुख तुझ माँहि अपार ।

सो भूत्यौ कीनो विधि बन्ध, ताते विषदा को सम्बन्ध ॥५॥

अन्यत्व भावना

जो तू यह तन तज कर जाय, तेरो तन फिर नाहिं कहाय ।

ऐसे इस तन से तू भिन्न, तो न विराने होंय अभिन्न ॥६॥

अशुचि भावना

खून पीव मल मूत्र मलीन, ऐसे तन से का रति कीन ।

तेरो तो शुचि ज्ञान शरीर, परम शान्ति अमृत रस सीर ॥७॥

आश्रव भावना

मन बच तन के चंचल होत, होत विचल यह आत्म ज्योति ।

सो ही विधि को आवन द्वार, ताते चंचलता निरवार ॥८॥

संवर भावना

कर्म रुकै कारज बन आय, ताको भाई एक उपाय ।

शुद्ध निजातम परिणति देख, यही कोटि शास्त्रनि को लेख ॥९॥

निजरा भावना

जैसी रुके विषय की चाह, शान्त होय सब तुषणा दाह ।

पूर्व वद्ध विधि होय अबन्ध, हो अनन्त सुख को सम्बन्ध ॥१०॥

लोक भावना

तीन लोक के सब ही थान, उपज्यौ मरयौ भयो दुख खान ।

नाना विधि इन्द्रिय सुख लहो, तो भी टुक सन्तोष न गह्यौ ॥११॥

बोधिदुर्लभ भावना

मिले मिले सुरपति के भोग, कंचन कामिनि को संयोग ।

विसमय नहीं मुलभ सब जान, दुर्लभ है स्वातम सरधान ॥१३॥
धर्म भावना

नहीं राग नहिं द्रेष न मोह, न हो विविध कल्पन संदीह ।
तत्त्व भासना केवल होय, सोही धर्म सत्य सुख जोय ॥१३॥
दोहा

को मैं आयो किधर से, जाऊंगा किस ओर ।

चितवत चितवत एक दिन, पा लूंगा शिव ठौर ॥१४॥
आत्म प्रगट लखते सभी, विश्व प्रगट हूं होय ।

पै निज आनंद लीनता हर न सके टुक कोय ॥१५॥
हे स्वतन्त्र विज्ञानमय वीतराग भगवान ।
बसो 'मनोहर' के हृदय गलै मोह की शान ॥१६॥

(१२५)

मत राग करो मत द्वेष करो, यहँ कोइ किसी का नहीं हुआ ।
ज्ञाता श तेरा स्वभाव-यों आप भूल क्यों दुखी हुआ ॥१॥
जनमत ही तो ये काम क्रोध, माया मद लोम न कहीं दिखा ।
ज्यों ज्यों बढ़ती गई तेरी आसु, किसके बहकाये असी हुआ ॥२॥
जिनको तू अपना कहता था, तुझको जो अपना कहते थे ।
वे रहे नहीं तू नहीं गया, फिर क्यों इनमें बेहोश हुआ ॥३॥
जो होता है वह होने दो, तू हंस न उनमें रागी हो ।
यह मायामय वैभव तेरा, न है, होगा, न कभी हुआ ॥४॥

(१२६)

“आत्मकीर्तन” (क्षुलुकगत लेने के बाद)

‘ हूँ स्वरन्त्र निश्चल निष्काम ।

ज्ञाता दृष्टा आत्म राम ॥टेका॥

मैं वह हूँ जो हैं भगवान्,
जो मैं हूँ वह हैं भगवान् ।
अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विश्व यह राग वितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान,
अर्मित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशा वश खोया ज्ञान,
बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुख दाता कोई न आन,
मोह राग ही दुख की खान,
निज को निज पर को पर जान,
फिर दुख का नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम,
विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्याग पहुँचूँ निज धाम,
आकुलता का फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत् परिणाम,
मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो पर कुत् परिणाम,
ज्ञायक भाव लखूँ अभिराम ॥५॥

(१२७)

“आरती” (क्षुद्रक ब्रत लेने के बाद)

ॐ जय जय अविकारी ॥टेक॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।

ध्यान तुम्हारा भव्य जनों क सकल कलेश हारी ॥१॥

हे स्वभावमय जिन तुम चीना, भव संतति टारी ।

तुव भूलत भव भव मैं भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥

पर सम्बन्ध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।

हे निज ब्रह्म लीनता तरा, चहूँ गति दुख हारी ॥३॥

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनि मन सञ्चारी ।

निर्विकल्प ज्ञायक परमात्म, शुचि गुण भंडारी ॥४॥

बसो बसो हे सहज ज्ञान घन, सहजशांतिचारी ।

टलैं टलैं सब मोह उपद्रव, पर बल बलधारी ॥५॥

~~~~~